

वर्ष 1, अंक 2, सितम्बर 2016, विक्रम संवत् 2073
प्रवेशांक अप्रैल 2016

संरक्षक :
सुभाष दास (पूर्व निदेशक, डच बैंक)
भारत सिंह रावत (एम.एन.सी. सलाहकार)
गोपाल बंसल (सामाजिक कार्यकर्त्ता)
नवीन जिंदल (व्यवसायी)
एड. सम्यक जैन (विधिवेत्ता)

सलाहकार : विराग पाचपोर

मुख्य संपादक : गुंजन अग्रवाल

संपादक : प्रमोद कौशिक

वित्तीय सलाहकार : सी.ए. आशानन्द सिंगला

विधिक सलाहकार : एड. (डॉ.) बलराम सिंह

सलाहकार संपादक : डॉ. अभिषेक गोयल

कला-संयोजन : त्रिभुवन भण्डारी

छायाकार : केशव कुमार

संवाददाता : अनुराग सिंह, प्रवीण कुमार द्विवेदी, विजय माथुर, अजय तिवारी, संतोष कुमार झा, श्लेषा शचीन्द्र, पं. बमशंकर झा शास्त्री, अमित दूबे, डॉ. बलराम सिंह

* सभी पद अवैतनिक हैं।

पत्र-व्यवहार का पता :
दी कोर, सी-15, फ्लैटेड फैक्ट्रीज़ कॉम्प्लेक्स,
देशबन्धु गुप्त मार्ग, झण्डेवाला माता मन्दिर के पास,
झण्डेवालान, नयी दिल्ली-110 055
दूरभाष : 011-45768329
मो.: 9899256433, 9654669293
ई-मेल : editor.thecore@gmail.com

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी प्रमोद कौशिक, सी-15, फ्लैटेड फैक्ट्रीज़ कॉम्प्लेक्स, देशबंधु गुप्त मार्ग, झण्डेवालान, नयी दिल्ली-110 055 से प्रकाशित एवं एम.के. प्रिंटर्स, 5516/5, न्यू चन्द्रवाल, जवाहर नगर, नयी दिल्ली-110 007 से मुद्रित। संपादक : प्रमोद कौशिक।

अपने अमूल्य सुझाव देने हेतु :
editor.thecore@gmail.com

संपादकीय

''हिंदी उन सभी गुणों से अलंत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है।''
—राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

अष्टलक्ष्मी पूर्वोत्तर

पूर्वोत्तर भारत से आशय भारत के सुदूर पूर्ववर्ती क्षेत्र से है जिसमें एकसाथ जुड़े हैं सात प्रांत – असम, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, नागालैण्ड, त्रिपुरा और अरुणाचलप्रदेश, अब इनमें सिक्किम भी जुड़ गया है। ऐसा नहीं है कि इनके बीच जातीय और धार्मिक एकरूपता है। अनेकता होने के बावजूद उत्तर-पूर्व के इन प्रांतों में सांस्कृतिक, आर्थिक और भौगोलिक एकता है। इसलिए इन्हें उत्तर-पूर्व की 'सात बहनें' या 'सेवन सिस्टर्स' भी कहा जाता है। एक तर्क ये भी है कि इन सात राज्यों का कुल क्षेत्रफल 2,55,511 वर्ग किलोमीटर है, जोकि देश के कुल भूभाग का लगभग 7 प्रतिशत है। 'सेवन सिस्टर्स' शब्द उत्तर-पूर्व के लिए पत्रकारीय तौर पर ही सर्वप्रथम इस्तेमाल हुआ। त्रिपुरा के एक पत्रकार श्री ज्योति प्रसाद सैकिया ने पहली बार अपनी पुस्तक में पूर्वोत्तर के 7 राज्यों को यह नाम दिया।

यदि इतिहास देखा जाये तो सन् 1947 में देश की स्वाधीनता के समय यहाँ तीन ही राज्य थे, जिसमें असम सबसे बड़ा राज्य था और मणिपुर और त्रिपुरा–दो रजवाड़े थे। बाद में राज्यों का पुनर्गठन हुआ और असम में से तीन और राज्य बने। सन् 1963 में नागालैण्ड, सन् 1973 में मेघालय, मिजोरम केंद्रशासित बना और बाद में अरुणाचलप्रदेश के साथ पूर्ण राज्य 1987 में बना। इस प्रकार ये सात (अब आठ) राज्य हैं और सांस्कृतिक रूप से परस्पर जुड़े हुए हैं। इनके आपस में परस्पर निर्भरता होने के कारण भी ये राज्य बहनों की तरह रहते हैं।

पूर्वोत्तर भारत सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के अन्य राज्यों से कुछ भिन्न ज़रूर दिखता है, लेकिन वस्तुतः ऐसा है नहीं। अति प्राचीन काल से भारतवर्ष का यह अभिन्न अंग और सनातन हिंदू-धर्म को माननेवाला रहा है। यहाँ हिंदू देवी-देवताओं के नाम बदल गए हैं और पूजा-पद्धति भी वैदिक मंत्रों से नहीं होती, लेकिन इसके कारण उन्हें अहिंदू नहीं कहा जा सकता। विकास के आधुनिक मापदण्ड से अछूते इस क्षेत्र को ईसाई मिशनरियों ने अपनी प्रयोगशाला बनाई और जमकर धर्मांतरण किया। इस प्रकार धीरे-धीरे यह क्षेत्र हिंदुत्व की मुख्य धारा से कटता गया है। लेकिन इसके बाद भी इस क्षेत्र में सनातन धर्म का जीवन-रस सूखा नहीं है।

स्वाधीनता के बाद की केन्द्र सरकारों की दृष्टि से यह क्षेत्र प्रायः ओझल रहा, फलतः भारत के मानचित्र में होकर भी न होने के समान का भाव था। यह इस तथ्य से समझा जा सकता है कि वर्तमान प्रधानमंत्री भारत के वह पहले प्रधानमंत्री हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में लगातार तीन दिन गुजारे हैं। उनके सामाजिक समारोहों में शामिल होकर और उनकी संस्कृति के बारे में अच्छे शब्दों का इस्तेमाल करके प्रधानमंत्री ने वहाँ के लोगों का दिल जीता। प्रधानमंत्री ने अपने मासिक रेडियो कार्यक्रम 'मन की बात' में कहा कि 'मैं लोगों से कहता हूँ कि यदि उन्हें सिंगापुर और दुबई जाने का मन करता है, या ताजमहल देखने का, तो उससे पहले पूर्वोत्तर जाएँ और ईश्वर का प्राकृतिक रूप देखें!' वस्तुतः हिंदुस्थान की उन्नति पूर्ण रूप से तब होगी जब पूर्वोत्तर से लेकर पूरे भारत का विकास होगा। हमें इन क्षेत्रवासियों को गले लगाना होगा, उनके दुःख-सुख में साझीदार होना होगा। और सबसे पहले हमें वहाँ जाना होगा, वहाँ जाए बिना दूसरे प्रांतों में बैठकर, केवल पुस्तकों या चित्रों के सहारे हम इस क्षेत्र के वैशिष्ट्य को कभी नहीं समझ सकते।

'दी कोर' के विगत अंक 'अयोध्या-विशेषांक' की राष्ट्रीय स्तर पर जो चर्चा हुई, उसने हमारा उत्साहवर्धन किया है। 'दी कोर' को पाठकों, लेखकों, विद्वानों का भरपूर सहयोग मिल रहा है और सभी के प्रयास से पत्रिका आगे बढ़ रही है। 'दी कोर' का 'पूर्वोत्तर-विशेषांक' आपको कैसा लगा, हमें अवश्य लिखें।

इस अंक में

इस अंक में

'दी कोर' का आगामी अंक

'दीपावली विशेषांक'



पुण्यभूमि भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से ही मंदिर न केवल धार्मिक आस्था के केन्द्र हैं, बल्कि वे समाज को एकसूत्र में जोड़े रखने के भी सबसे बड़े केन्द्र है। नाना वर्ण, जाति, समुदाय के लोग बिना भेदभाव के मंदिरों में पूजा-अर्चना करने आते हैं, इससे समाज में समरसता का संचार होता है। मंदिर की उपस्थिति से वातावरण में पवित्रता और लोगों में आध्यात्मिकता का संचार होता है। इतना ही नहीं, बड़े मंदिरों के दर्शनार्थ आनेवाले दर्शनार्थियों से आसपास बसे हज़ारों परिवार आर्थिक रूप से लाभान्वित होते हैं। देश में बहुत-से मंदिरों द्वारा शिक्षण-संस्थान, अस्पताल और अन्य कार्य संचालित किए जा रहे हैं जो समाज की बहुमूल्य सेवा कर रहे हैं। देश के कोने-कोने में बहुत-से मंदिर काल के थपेड़ों को झेलकर आज भी खड़े हैं और इतिहास की दास्तान सुना रहे हैं। अनेक मंदिरों की वास्तुशैली आज भी प्राचीन भारत की उत्कृष्ट सभ्यता-संस्कृति का दिग्दर्शन आती है। 'दी कोर' का आगामी अक्तूबर, 2016 दीपावली विशेषांक भारत और विश्व के मंदिरों पर अनूठी सामग्रियों से समन्वित रहेगा।

—सम्पादक





‘दी कोर’ के दो अंक ‘अयोध्या विशेषांक’ तथा ‘स्वदेशी विशेषांक’ प्राप्त कर सहजानन्द का बोध हुआ। आपकी इस अहैतुकी आत्मीयता के लिए बहुशः आभार।

‘दी कोर’ (मासिक) पत्रकारिता-साहित्य में अपनी विलक्षण पहचानवाली है। साथ ही, स्वीकृत क्षेत्र-विशेष की विशिष्टता तथा सांस्कृतिक विविधता को उजागर करनेवाली है। सचित्र अयोध्या परिशिष्ट से अनेक ऐसी बातों की जानकारी मिली, जिन्हें मैं अब तक नहीं जानता था। ‘दी कोर’ पत्रिका की एक उल्लेखनीय निजता यह भी है कि जो कोई अन्य पत्रिका नहीं सोचती, उसे यह पत्रिका सोचती है। चिन्तन और अनुचिन्तन की दृष्टि से यह पत्रिका अपने आपमें अद्‌भुत या अनोखी है। कोलकाता के रसगुल्ले का सचित्र परिचय सचमुच मानसिक स्तर पर मधुर मिठास परोसता है। हिंदुत्व की गरिमा का समुद्‌भावन करनेवाली यह पत्रिका प्रत्येक हिंदू के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय है।

आपकी सम्पादकीय मनीषा से मण्डित यह पत्रिका मुद्रण-कला की वरेण्यता के विचार से भी विलक्षण है। स्वच्छता और निर्दोषता में भी उत्तम है।

आपने मुझे स्नैहिक मूल्य देकर इस पत्रिका को मेरे लिए भिजवाया, इसलिए भी आपकी बन्धुता भूरिशः श्लाघ्य है। बहुप्रतिभ पत्रकार के रूप में आपकी मैं अहर्निश यशोवृद्धि की कामना करता हूँ।

—साहित्यवाचस्पति डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

‘दी कोर’ पत्रिका के दो अंक मिले। धन्यवाद। इसका अयोध्या-अंक स्तरीय और पठनीय है और श्रीरामजन्मभूमि के विवाद तथा उसके ऐतिहासिक तथ्यों को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करता है। आपने इस अंक से पाठकों को सच्चाई से परिचित करा दिया है और पत्रकारिता के धर्म को निभाया है। धर्म, इतिहास और न्याय हमारे साथ है, इसलिए विजय हिंदू समाज की ही होगी। मैं चाहता हूँ, राम मन्दिर का निर्माण मेरे जीवन में हो जाये तो आध्यात्मिक तृप्ति तथा संतोष एवं परमानन्द की अनुभूति कर सकूँ। हमें अब न्यायालय के द्वारा शीघ्र फैसला कराने का प्रयत्न करना चाहिए। शुभकामनाओं के साथ,

—डॉ. कमल किशोर गोयनका, दिल्ली

‘दी कोर’ के दो अंक मिले। बहुत अच्छा लगा। सामग्री का चयन संपादक मण्डल की विद्वत्ता और योग्यता की स्पष्ट पहचान देता है। आपका प्रयास प्रशंसनीय है। ईश्वर आपको सफलता और यश प्रदान करें।

—अमरेन्द्र नारायण
भूतपूर्व महासचिव, एशिया पैसिफिक टेलीकम्युनिटी, बैंगकॉक

‘दी कोर’ पत्रिका मुझे निरंतर मिल रही है। इस प्रकार की राष्ट्रीय पत्रिका का बहुत अभाव हो गया है जिस पत्रिका को घर के सभी सदस्य पढ़ सकें। उसकी पूर्ति ‘दी कोर’ पत्रिका करती है। इसके लिए पत्रिका में परिश्रम कर रहे सभी सदस्यों का कार्य सराहनीय है। इस पत्रिका की सामग्री बहुत विस्तृत और बहुमुखी है इसलिए यह संग्रहणीय भी है। आजकल की पत्रिकाओं में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ मिलती हैं परन्तु भाषा-संबंधी ज्ञान के कारण इस पत्रिका में त्रुटियाँ बहुत खोजनी पर भी नहीं मिलतीं। मेरा संपादक-मण्डल से निवेदन है कि ज्योतिष का मासिक फलादेशवाला स्तम्भ भी इस पत्रिका में आरम्भ किया जाए।

इसी कड़ी में दी कोर का ‘अयोध्या विशेषांक’ प्राप्त हुआ। वैसे तो इस पत्रिका का प्रत्येक अंक ज्ञान एवं प्रेरणा से भरपूर रहता है, किन्तु अयोध्या-विशेषांक विगत के सभी अंकों में सर्वश्रेष्ठ दिखाई दिया। निःसंदेह यह अंक हिंदू जनमानस में एक नयी तरंग एवं उमंग उत्पन्न करेगा।,

यह विशेषांक अत्यंत संग्रहणीय है। इसमें पत्रिका के संपादक-मण्डल के अथक परिश्रम को देखा जा सकता है। अयोध्या विश्व की प्राचीन एवं प्रथम स्मार्ट-सिटी थी, जिसे पढ़कर मैं हतप्रभ रह गया। क्योंकि यह भारत-विरोधी बुद्धिजीवियों के मुँह पर कालिख पोतने-जैसी घटना सिद्ध होती है। श्री चंपत राय जी का साक्षात्कार एवं गुरुमैता जी का आलेख ज्ञानवर्धक एवं उत्साहवर्धक लगा।

मैं संपादक जी को साधुवाद देते हुए आशान्वित हूँ कि भविष्य में ‘दी कोर’ को पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की ‘सरस्वती’ और श्री धर्मवीर भारती की ‘धर्मयुग’-जैसी प्रतिष्ठा मिलेगी। हमारे संपादक जी की प्रतिभा एक समर्थ संपादक के रूप में ख्यात होगी। पुनः संपादक जी एवं पत्रिका-परिवार को हिंदी में अच्छी पत्रिका प्रकाशित करने हेतु बधाई देता हूँ। मैं सदैव पत्रिका को अपने आलेखों एवं शोध-पत्रों से भरपूर सहयोग भी प्रदान करता रहूंगा।

—डॉ. राजकुमार उपाध्याय ‘मणि’,
अध्यक्ष, प्रयोजनमूलक हिंदी-विभाग,
सरगुजा विश्वविद्यालय, सरगुजा, छत्तीसगढ़

‘दी कोर’ का ‘अयोध्या-विशेषांक’ प्राप्त हुआ । पूर्व के समस्त अंकों की भाँति यह भी एक संग्रहणीय अंक है। अयोध्या-विवाद

जैसे बहुश्रुत विषय पर भी अनेक नये तथ्य इस अंक से जानने को मिले। यह अंक अयोध्या के सम्बन्ध में तथ्यों, आँकड़ों, सन्दर्भों और जानकारियों का एक बहुत ही उत्कृष्ट संकलन सिद्ध हुआ है। मैं 'दी कोर' के 'पूर्वोत्तर अंक' की व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

—अंकित कुमार हिंदू,
गाज़ियाबाद

'दी कोर' का अगस्त अंक 'अयोध्या-विशेषांक' पढ़ने को मिला। अंक हाथ में लेते ही दिल प्रफुल्लित हो गया। बहुत ही शानदार कवर पेज था, बिलकुल ही अलग ढंग का, पत्रिकाओं की भीड़ में एक नयी ताजगी और स्फूर्ति का एहसास करानेवाला... अयोध्या पर आवरण-कथा भी अत्यंत सराहनीय है। अयोध्या से लेकर अयोध्या-विवाद की जितनी जानकारी इस आवरण-कथा के माध्यम से दी गई है, वह अद्‌भुत और सराहनीय है। यह गागर में सागर के सामान है। युगपुरुष अशोक सिंहल जी और लालकृष्ण आडवानी जी पर बेहतरीन आलेख हैं। कोलकाता-परिशिष्ट भी उच्च कोटि का है। कुल मिलाकर राजनीति से अलग यह एक बेहतरीन सामाजिक पत्रिका है... पत्रिका का भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल है।

—सचिन सिंह गौड़, संपादक, 'सिंह गर्जना'

'दी कोर' पत्रिका का जुलाई अंक प्राप्त हुआ। यह 'स्वदेशी विशेषांक' वास्तव में देशभक्ति को जागृत करनेवाला है। स्वदेशी-विषयक विविध ज्ञान के संसूचक इस अंक में भारतीय संस्कृति की अमिट छाप दृष्टिगोचर होती है। परम्परा का पालन करते हुए आधुनिकता की दौड़ में स्वयं को बनाए रखनेवाले इस अंक के सभी लेख प्रशंसनीय हैं। इस समय अत्यन्त प्रासंगिक इस अंक की उपयोगिता इस दृष्टि से भी है कि इस प्रकार के ज्ञान का संग्रह अन्यत्र दुर्लभ है। इस पत्रिका का नित्यप्रति संवर्धन होना चाहिये। एतदर्थ 'दी कोर' पत्रिका की सम्पूर्ण समिति को हृदय से आभार।

—प्रवीण कुमार द्विवेदी,
संस्कृत-विभाग, आई.पी. कॉलेज फॉर वूमेन, नयी दिल्ली

आपके द्वारा प्रेषित 'दी कोर' का 'स्वदेशी-विशेषांक' जुलाई 2016 अंक मिला। मात्र चौथा अंक और ये ऊँचाइयाँ ! वाह !! आपको और आपकी टीम को बधाई। स्वदेशी क्या है और इसके माध्यम से राष्ट्रीय विकास की अवधारणा, सामयिक विषय-चयन तथा स्वदेशी के माध्यम से इतिहास रचती सफलता की कहानियाँ संपादक की दूरदृष्टि की परिचायक है। हमें लगता है कि स्वदेशी का यह आगाज़ भारतीय विकास को नये आयाम प्रदान करेगा। आकर्षक आवरण, ज्ञानप्रद आलेख, त्रुटिरहित प्रकाशन, आलेख की कहानी को चित्रों के माध्यम से वर्णन करने का अन्दाज़ अनूठा लगा। शुभकामनायें।

—डॉ. ए. कीर्तिवर्धन, मुजफ्फरनगर

'दी कोर' के सभी अंक पढ़ने के बाद ऐसा लग रहा है कि प्रिंट मिडिया के क्षेत्र में एक बार फिर जान आ गई है। किसी एक विषय को लेकर पूरी जानकारी एक ही अंक में समाहित करना बड़ी मेहनत और एक विस्तृत सोच का काम है। सभी अंक संग्रहणीय और सम्पूर्ण हैं। 'शिक्षा-विशेषांक', 'आरोग्य-विशेषांक', 'स्वदेशी-विशेषांक' एवं 'अयोध्या-विशेषांक' अपने आपमें एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। 'अयोध्या-विशेषांक' को जिस तरह से प्रस्तुत किया गया है, वह अपने आपमें एक तथ्यपूर्ण तथा जानकारीजनक है, जिनसे आमजन प्रायः अनभिज्ञ रहा है। यह अंक संग्रहणीय तो है ही, मंदिर-निर्माण में उपयोगी तथ्यों के आधार पर छापे गए लेख अपने आपमें सम्पूर्ण हैं। 'दी कोर' की टीम बधाई की पात्र है।

—प्रफुल्ल चन्द्र ठाकुर, समस्तीपुर, बिहार

अगस्त 2016 का अयोध्या विशेषांक प्राप्त हुआ। जो तथ्य इस विशेषांक में दिए गए हैं, उनके आधार पर कोई भी राम मंदिर को बनाने से नहीं रोक सकता। राम के जन्मस्थान पर इतने सारे साक्ष्य होने के बावजूद भारत का तन्त्र क्या कर रहा है? अगर ऐसा विषय किसी अन्य देश में होता तो एक दिन भी यह विवाद खड़ा नहीं रहता। पत्रिका की टीम को बहुत-बहुत बधाई।

—संजय कुमार, कानपुर

विगत कई वर्षों से शहर के बुक स्टॉल पर घंटों खड़े रहकर कई पत्रिकाओं के पन्ने उलटता-पलटता रहा। पर कोई ऐसी स्तरीय पत्रिका नजर नहीं आती थी जिसे घर ले जाकर आराम से पढ़ा जा सके, बच्चों के साथ-साथ परिवार के सदस्यों को पढ़ने दिया जा सके, या फिर किसी के जन्मदिन, विवाह वर्षगाँठ पर उपहारस्वरूप दिया जा सके। रेल-यात्राओं के दौरान ट्रेनों की लेट-लतीफी में अपने को व्यस्त रखने के लायक भी कोई पत्रिका नजर नहीं आती थी। ऐसे में 'दी कोर' पत्रिका का प्रवेशांक से लेकर विगत आये सभी अंक तपते रेगिस्तान में वर्षा के सुकून भरे फुहारों-सी महसूस हुई। हर अंक एक-से-बढ़कर एक, तथ्यों से भरे, प्रामाणिक और मनोरंजक लेख, फ़िल्म-समीक्षा, कविता से भरे। 'दी कोर' की पूरी टीम को हम पुस्तकप्रेमियों को एक अच्छी पत्रिका उपलब्ध करवाने के लिए कोटिशः धन्यवाद।

—पंकज कुमार पाण्डेय, समस्तीपुर, बिहार

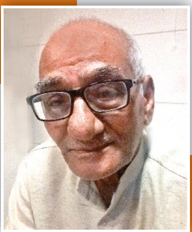
'दी कोर' का अयोध्या विशेषांक पठनीय एवं संग्रहणीय है। इसमें कुछ ऐसी शोधपूर्ण सामग्रियाँ हैं जो आम लोगों के सामने नहीं आई थीं। जैसे बाबरी मस्जिद के निर्माण से पूर्व यहाँ हिंदुओं के आस्थामूलक स्थान का रहना, जिसे मुस्लिम इतिहासकारों ने भी माना है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय में दायर किए गए हलफनामों में दोनों पक्षों के शिकायतकर्ताओं के हलफनामों को ऐतिहासिक क्रमों में दिखलाना, माननीय उच्च न्यायालय द्वारा संज्ञान में लेना, अयोध्या विवाद को ऐतिहासिक क्रम में तिथिवार दिखलाना इत्यादि।

जहाँ तक इस विवाद का हल वर्तमान में सौहार्दपूर्ण ढंग से निकालने का सवाल है, विशेषांक इसका तर्कसंगत उत्तर नहीं देता है, मुसलमान, वामपंथी, दक्षिणपंथी, प्राचीनता, आधुनिकता आदि जैसे द्वंद्वसामासिक शब्दावलियों में अंतर्विरोधों को रखकर इस विवाद का हल निकालना संभव नहीं है। मेरी दृष्टि में अयोध्या का वर्तमान विवाद अधिकतर सांस्कृतिक और धार्मिक है, जबतक भारतवासियों को जबतक समान नागरिकता का अधिकार नहीं मिल जाता है और राष्ट्रीय चरित्र का व्यावहारिक विचार नहीं आता है, तबतक यह विवाद चलता रहेगा।

—शचीन्द्र, महासचिव
अखिल भारतीय जातिविहीन समाज निर्माण समिति, मधेपुरा

कामाख्या शक्तिपीठ

कामाख्या वरदे देवि! नीलपर्वत वासिनि!
त्वं देवि जगतां मातर्योनिमुद्रे नमोऽस्तुते!!



■ **प्रो. भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता**
सेवानिवृत्त आचार्य एवं अध्यक्ष, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

असम राज्य की राजधानी गुवाहाटी के समीप ही प्राचीन परमपावन कामरूप क्षेत्र अवस्थित है। ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे 200 फीट ऊँचे नीलांचल पर्वत पर इस कामरूप क्षेत्र में कामाख्या शक्तिपीठ अधिष्ठित है। तंत्र-साधना की दृष्टि से यहाँ की कामाख्या देवी का मन्दिर सर्वाधिक जाग्रत शक्तिपीठ है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही यह क्षेत्र ज्योतिष, तंत्र और आगम का प्रमुख केन्द्र रहा है। यहाँ की प्राकृतिक सुषमा भी सुरम्य है। अतएव पर्यटन की दृष्टि से भी देश के कोने-कोने से पर्यटक एवं भक्त बड़ी संख्या में यहाँ आते रहते हैं। पहले तो यातायात की असुविधा थी। फलतः पहुँचने में बड़ी कठिनाई होती थी। किन्तु, अब यथेष्ठ साधन उपलब्ध हैं।

वस्तुतः यहाँ का मनोहारी प्राकृतिक सौंदर्य यात्रियों और पर्यटकों को बरबस अपनी ओर खींच लेता है। लोकविश्वास है कि इसी स्थल पर सती (पार्वती) का योनिमण्डल गिरा। इससे इस पर्वत का रंग नीला हो गया । फलतः यह नीलांचल पर्वत कहलाने लगा। कालांतर में यही स्थान कामाख्या महापीठ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। पुरातात्त्विक ग्रंथों में इस मंदिर के निर्माण की रोचक कथाएँ पढ़ने को मिलती हैं। सर्वत्र

देवी की महिमा का बखान है। देश के कोने-कोने से हिंदू-भक्त एवं अन्य पर्यटक बड़ी संख्या में आकर इस पवित्र स्थल को दोलायमान रखते हैं। वासन्ती-पूजा तथा शारदीय नवरात्र आदि त्योहारों पर भक्तजनों की भीड़ अधिक जुटती है।

कामाख्या के नील पर्वत की ऊँचाई लगभग 690 फुट है। मन्दिर 525 फीट की ऊँचाई पर है। बारह खम्बों से सज्जित इस मन्दिर में शिव-पार्वती की कामेश्वर-कामेश्वरी रूप प्रतिमा स्थापित है। इसे भोगमूर्ति भी कहा जाता है। ये मूर्तियाँ अष्टधातु की बनी हैं। प्रवेश करते ही भक्तगण पहले इसी हरगौरी प्रतिमा के दर्शन करते हैं। करीब दस सीढ़ियाँ नीचे उतरकर एक गुफा में प्रवेश करते हैं। यहाँ धूप-दीप-फूलों की सुगन्ध से गुफा महक रही है। दीपक के हलके प्रकाश में हम देवी की महामुद्रा के दर्शन करते हैं। यहीं एक शिलाखण्ड पर देवी का योनिमण्डल एक स्वर्ण टोप से ढका है। फूलों से सज्जित भी है। एक जलधार इस प्रस्तरखण्ड से बह रही है। जिसका पान और स्पर्श दर्शनार्थी कर रहे हैं। तंत्र-साधना के लिए जागृत पीठ की गुफा में मैं खड़ा हूँ। देवी के जनन अंग की पूजा यहाँ होती है, जो मातृ-शक्ति है, काम-शक्ति है। विश्व की सरसता और मधुरता का आधार है।

इस कामाख्या-शक्तिपीठ के पीछे पुराणों में एक मार्मिक कथा आती है। दक्ष प्रजापति के घर स्वर्ग की महामाया ने कन्या के रूप में जन्म लिया और शिवाराधना कर उन्हें पति के रूप में वरण किया। दक्ष अपने जामाता शिव को पसन्द नहीं करते थे। एक बार दक्ष प्रजापति ने एक महान् यज्ञ का आयोजन किया। इस महान् आयोजन में उन्होंने 27 जामाता आमंत्रित किये, किन्तु शिव को नहीं बुलाया। जब सती ने अपने पिता के घर होनेवाले इस विशाल उत्सव के बारे में सुना, तो उसने अपने पति शिव से पिता के घर यज्ञ में जाने की बात पूछी। शिव ने सती का समझाया कि बिना निमंत्रण कहीं भी जाना अपमान है। किंतु सती के मन में अपने पिता के घर के यज्ञोत्सव को देखने की तीव्र लालसा थी। उन्होंने शंकर से बार-बार आग्रह किया कि वे उसे पिता के घर जाने की आज्ञा दें। शिव ने सती के हठ पर उसे अपने दो गणों के साथ पिता के घर भेज दिया।

जब शिवप्रिया सती अपने पिता के घर पहुँची, तो वहाँ किसी ने उसका स्वागत नहीं किया। सती ने पूरी यज्ञशाला घूमकर देखी। वहाँ सभी देवताओं के भाग थे, किन्तु शिव का भाग नहीं था। तब सती अपने पिता के पास गयी और पूछा कि हे पिता! आपने मेरे पति शिव का भाग क्यों नहीं रखा है? दक्ष प्रजापति ने उत्तर दिया कि तुम्हारे पति शिव संहारक हैं। असगुनी देवता हैं। उनका शुभ कार्य में क्या काम? यह सनते ही सती क्रोध से तमतमा उठी और हवनकुण्ड में कूद पड़ी। चारों ओर हाहाकार मच गया। शिव के गणों ने यज्ञशाला को नष्ट कर डाला। सूचना पा शिव दौड़े आए और सती की अधजली देह को कंधे से चिपटाए विक्षिप्त से इधर-उधर भटकने लगे। सती के जले शरीर के अंग एक-एक करके स्थान-स्थान पर गिरने लगे। जहाँ-जहाँ ये अंग गिरे, वहाँ-वहाँ एक शक्तिपीठ बन गया। जहाँ जिह्वा गिरी, वहाँ ज्वाला जी; जहाँ वक्ष गिरा, वहाँ व्रजेश्वरी; जहाँ चरण गिरे, वहाँ चामुण्डा और चिन्तपूर्णी; जहाँ नैन गिरे वहाँ नैना देवी और जहाँ कर्णमणि गिरी, वहाँ मणिकर्णिका आदि तीर्थ बने। कामरूप आसाम के नीलांचल पर्वत पर देवी का मुख्य अंग योनिमण्डल गिरा। इसलिए यहाँ बना एक विशिष्ट जागृत शक्तिपीठ।

कामाख्या-मन्दिर में पूजा की विशिष्ट विधियाँ हैं। देवी के भक्त कबूतर की बलि देते हैं– ऐसा वहाँ के एक मित्र बतला रहे थे। मन्दिर में आषाढ़ मास के मृगशिरा नक्षत्र में एक उत्सव तीन दिनों तक मनाया जाता है। यह देवी के ऋतुमती होने का उत्सव है। यहाँ चैत्र कृष्ण तृतीया को कामेश्वर-कामेश्वरी का विवाहोत्सव बड़े उत्साह से मनाया जाता है।

इन मुख्य उत्सवों के अतिरिक्त दीपावली, दुर्गापूजा, जन्माष्टमी, महाशिवरात्रि आदि उत्सव भी बड़ी धूम-धाम से आयोजित किए जाते हैं। उत्सवों के अवसर पर यहाँ की भव्यता दर्शनीय होती है। देवी कामाख्या का यह मन्दिर अति प्राचीन है। कथा है कि सर्वप्रथम कामदेव ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था। जब शिव के क्रोध से कामदेव भस्म हो गए और पत्नी रति की प्रार्थना पर उन्हें पुनर्जन्म मिल गया, तब विश्वकर्मा के साथ मिलकर उन्होंने कामाख्या-मन्दिर का निर्माण किया। मन्दिर में 64 योगिनियों और 80 भैरवों की मूर्तियाँ स्थापित कीं। देवी के गुप्तांग की स्थापना कर उसकी पूजा-अर्चना आरंभ की। तभी से नीलांचल का

तंत्र-साधना की दृष्टि से कामाख्या देवी का मन्दिर सर्वाधिक जाग्रत शक्तिपीठ है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही यह क्षेत्र ज्योतिष, तंत्र और आगम का प्रमुख केन्द्र रहा है। यहाँ की प्राकृतिक सुषमा भी सुरम्य है। लोकविश्वास है कि इसी स्थल पर सती (पार्वती) का योनिमण्डल गिरा। फलतः यह नीलांचल पर्वत कहलाने लगा। कालांतर में यही स्थान कामाख्या महापीठ के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

यह स्थान जागृत शक्तिपीठ बना। कालांतर में हिंदू-धर्म के ह्रास के साथ यह मन्दिर विलुप्त हो गया। पर्वत पर आवागमन कम हुआ और मन्दिर जंगलों से घिर गया। छठी शताब्दी ईसापूर्व अथवा आठवीं शताब्दी ईसवी में आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य ने हिंदू-धर्म में पुनः प्राण फूंके और यह विलुप्त शक्तिपीठ पुनः जागृत हो गया। यहाँ प्रसिद्ध तान्त्रिक अभिनवगुप्त से शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ भी किया।

सन् 1490 ई. में राजा शिवसिंह (मिथिला-नरेश) ने कामाख्या-मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। इससे पूर्व सन् 1150 में कामरूप के राजा धर्मपाल ने बहुत-से ब्राह्मण-परिवारों को यहाँ बसाकर हिंदू-धर्म को पुनर्प्रतिष्ठित किया। किंवदन्ती है कि एक बार राजा शिवसिंह जंगल में रास्ता भटक गए, तब उन्हें एक स्त्री पूजा करती हुई मिली। उस स्त्री ने बताया कि जहाँ वह पूजा कर रही है, वह देवी का स्थान है। यहाँ पूजा करने से मनोकामनाएँ पूरी होती हैं। तब राजा ने भी वहाँ देवी की स्तुति की। फलस्वरूप, उन्हें अपना राज्य प्राप्त हो गया। जब राजा ने उस देवी-स्थान पर मन्दिर-निर्माण के लिए खुदाई आरम्भ की, तो वहाँ महादेवी का प्राचीन मन्दिर निकला।

सन् 1553 में पठान सेनापति काला पहाड़ ने कामरूप पर चढ़ाई की और इस मन्दिर को नष्ट कर दिया। बाद में युवराज चिलाराय और महाराज नरनारायण ने पुनः यहाँ मन्दिर का निर्माण करवाया।

नीलांचल पहाड़ी पर जाने के कई रास्ते हैं। चारों ओर से पहाड़ी सीढ़ियाँ बनी हैं, जो काफ़ी दुर्गम हैं। कुछ ही यात्रीगण इन सीढ़ियों से चलकर देवीपीठ के दर्शन करते हैं। अधिकांश पर्यटक एवं यात्री कामाख्या देवी का दर्शन करने के लिए नीचे खड़ी टैक्सियों से ऊपर जाते हैं। संपूर्ण पहाड़ी नारियल, बाँसों तथा अन्य जंगली पेड़ों से आच्छादित है। पहाड़ों के शीर्ष से गुवाहाटी का दृश्य बड़ा ही मनोरम दिखाई पड़ता है।

कामरूप का मंदिर ऊपर पहाड़ी के चौरस ढलान पर स्थित है। बाहर एक विशालकाय प्रकोष्ठ बना है, जिससे यात्री प्रवेश करते हैं। प्रकोष्ठ के अंदर पहुँचते ही सबसे पहले चार उच्च शिखर दिखाई पड़ते हैं, जो एकसीध में बैरकनुमा बने हैं। पीठ का मुख्य द्वार काफ़ी अलंकृत एवं सुसज्जित है। मुख्य द्वार के अंदर प्रवेश करते ही सामने अष्टधातु निर्मित चलन्ता कामेश्वर और कामेश्वरी देवी की मूर्तियाँ हैं। चलन्ता मूर्ति के दर्शनकर देवी-मन्दिर के नीचे गुफा में उतरकर महामुद्रा पीठ के दर्शन होते हैं। देवी की योनिमुद्रा महापीठ में दस सीढ़ी नीचे है। यहाँ काफी अँधेरा रहता है, इसलिए निरंतर दीप प्रज्वलित रहता है। अन्य जगहों पर बिजली के प्रकाश की व्यवस्था है। पीठस्थान की पूर्व दिशा में मातंगी भगवती, इसके अनन्तर सरस्वती एवं कमला का स्थान है।

कमलादेवी के चारों ओर दीवारों से खचित विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं, जिनमें प्रमुख हैं– मंगल चण्डी, कल्कि अवतार, युधिष्ठिर, श्रीरामचन्द्र, बटुकभैरव, नारायण गोपाल, अन्नपूर्णा, द्रोणाचार्य, नीलकण्ठ, नन्दीमृगी और मनसा देवी आदि।

चलन्ता-मंदिर से सटे 'पंचरत्न-मन्दिर' में चामुण्डा देवी की मूर्ति है। नाद-मन्दिर में अहोम-राजाओं के कई शिलालेख भी सुरक्षित हैं। प्रमुख मन्दिर (पीछे) के चारों ओर अनेक मन्दिरों की शृंखलाएँ हैं, जिनमें कंबलेश्वर विष्णु मन्दिर तथा भैरवी, छिन्नमस्तिका, काली, तारा, भुवनेश्वरी आदि दश विद्याएँ प्रमुख हैं। ये सभी अन्य मन्दिर सुपारियों की ऊँची-ऊँची वृक्षावलियों से आच्छादित हैं। एक छोटा-सा कुण्ड भी पहाड़ी पर स्थित है, जिसे 'भैरवी देवी के कुण्ड' के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त गुवाहाटी शहर एवं आसपास भी अनेक मन्दिर हैं।

ब्रह्मपुत्र नदी के मध्य भाग में शैलद्वीप पर स्थित उमानन्द भैरव का मन्दिर है। इसके विषय में किंवदन्ती है कि महादेव जी



सन् 1490 ई. में राजा शिवसिंह (मिथिला-नरेश) ने कामाख्या-मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। इससे पूर्व सन् 1150 में कामरूप के राजा धर्मपाल ने बहुत-से ब्राह्मण-परिवारों को यहाँ बसाकर हिंदू-धर्म को पुनर्प्रतिष्ठित किया।



देवीपुराण (महाभागवत) के बारहवें अध्याय तथा कालिकापुराण के 61वें अध्याय में इस कुब्जिकापीठ (कामाख्या) में सती के योनिमण्डल के गिरने तथा पर्वतरूपी शिव में देवी के विलीन होने, पर्वत का नाम नीलवर्ण होने तथा इस महातुंग पर्वत के पाताल के तल में प्रवेश करने का उल्लेख है। इस तीर्थस्थल में देवी-मूर्ति नहीं है। योनि के आकार के शिलाखण्ड पर लाल रंग की गेरु के घोल की धारा गिराई जाती है और वह रक्तवर्ण के वस्त्र से ढका रहता है। महाभारत (12.30) के साक्ष्य से इसका माहात्म्य विलक्षण है। यहाँ भगवती साक्षात् स्थित है। इस महापीठ के लाल जल में स्नान करने ब्रह्महत्यारा भी भवबंधन से छुटकारा पा जाता है :

'यत्र साक्षाद् भगवती स्वयमेव व्यवस्थिता।
तत्र गत्वा महापीठे स्नात्वा लोहित वारिणि।
ब्रह्म हापि नरो सद्यो मुच्यते भवबन्धनात्।'

वहाँ जाकर स्नान करके निम्न मंत्र से कामेश्वरी भगवती को प्रणाम करने का विधान है :

'कामेश्वरी च कामाख्यां कामरूप निवासिनीम्।
तप्तकांचन संकाशां तां नमामि सुरेश्वरीम्॥'

–देवीपुराण, 12.34-35

कामरूप-कामाख्या में सबसे बृहत् मेले का आयोजन दुर्गापूजा के अवसर पर होता है, जब विभिन्न अंचलों से तीर्थयात्री एवं पर्यटक इस पवित्र पीठ पर आकर देवी के दर्शन करते हैं। कामरूप की नारियों के सौंदर्य में जादूभरा आकर्षण होता है। वे सिर्फ सुन्दर ही नहीं होतीं, बल्कि मेहनती और कार्यकुशल भी होती हैं तथा तंत्र-मंत्र-वशीकरण से वशीभूत कर लेती हैं।

यहाँ के अंबुवाची व्रत की अपार महिमा है। इस व्रत में अग्नि पर पकाई हुई कोई भी वस्तु नहीं खाई जाती। व्रती केवल फल खाकर रहते हैं।

कामाख्या में अन्य उत्सवों के अतिरिक्त देवध्वनि एक प्रधान उत्सव है। इसमें ढोलक, नगाड़े, झाँझ आदि तरह-तरह के वाद्य उच्च स्वर में बजाए जाते हैं। यह उत्सव अत्यन्त प्राचीन है। गायन-वादन के साथ नृत्य की परम्परा भी है, जिसे 'देउधा' कहा जाता है। 'देउधा' शब्द का अर्थ है– देवता का कृपापात्र। दैवी-भक्ति के बल पर भैरव-वेश में सज्जित हो दो दिनों तक अनेक भक्त लगातार नृत्य करते हैं।

ने इसी स्थान पर कामदेव को भस्म किया था। शिवरात्रि के अवसर पर यहाँ एक विशाल मेला लगता है। अश्वकान्त मन्दिर ब्रह्मपुत्र नदी के दूसरे तट पर गुवाहाटी के उत्तर में स्थित है। यहाँ कूर्मरूपी विष्णु भगवान् का मन्दिर है। पर्वत से ऊपर अनन्तशैय्या पर शायित नारायण का मन्दिर है। ब्रह्मपुत्र के तट पर भगवान् विष्णु के चरण-चिह्न हैं। यहाँ पर पुरखों के उद्धार की कामना से पिण्डदान करने का विधान है। मणिकर्णेश्वर मन्दिर मणिशैल नामक पर्वत पर उत्तर गुवाहाटी गाँव में स्थित है। इसके अतिरिक्त बद्रिकाश्रम गुवाहाटी से दस किमी. दूर पर्वतश्रेणियों के बीच स्थित है। सूर्य और चन्द्रग्रहण के समय यहाँ हज़ारों धर्मपरायण यात्रियों का समागम होता है। नवग्रह-मन्दिर उजान बाज़ार मोहल्ला गुवाहाटी में तथा उग्रतारा ब्रह्मपुत्र के किनारे और शुक्रेश्वर पान बाज़ार में स्थित है। वाणेश्वर, पाण्डुनाथ, हयग्रीव, माधव आदि मन्दिर भी आसपास अवस्थित है।

तंत्रों के साक्ष्य से करतोया नदी से लेकर ब्रह्मपुत्र नद त्रिकोणाकार कामरूप

देवी की योनिमुद्रा महापीठ में दस सीढ़ी नीचे है। यहाँ काफी अँधेरा रहता है, इसलिए निरंतर दीप प्रज्वलित रहता है। अन्य जगहों पर बिजली के प्रकाश की व्यवस्था है।

प्रदेश माना गया है। इसके अन्तर्गत सौभारपीठ, श्रीपीठ, रत्नपीठ, विष्णुपीठ, रुद्रपीठ तथा ब्रह्मपीठ आदि कई शक्तिपीठ हैं। इनमें कामाख्यापीठ सबसे प्रमुख है। इस मंदिर का प्राचीन नाम आनन्दाख्य था। देवीभागवतपुराण (स्कन्ध 7, अध्याय 38) में कामाख्यादेवी का माहात्म्य वर्णित है। इसके अनुसार इसका दर्शन, भजन, पाठ-पूजा करने से सर्वविघ्नों की शान्ति होती है। भारत के 51 शक्तिपीठों में कामरूप को सर्वोत्तम कहा गया है–

'कामाख्या परमं तीर्थं कामाख्या परमं तपः।
कामाख्या परमोधर्मः कामाख्या परमं गतिः॥'



भारत और बृहत्तर भारत का

सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक वैभव का अद्भुत ख़ज़ाना



■ डॉ. राधेश्याम शुक्ल
लेखक हिंदी दैनिक 'स्वतंत्र वार्ता' के संपादक हैं

भारत का उत्तर-पूर्व का क्षेत्र शायद इस देश का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। प्राकृतिक संपदा तथा सांस्कृतिक वैभव का जैसा असीम भंडार यहाँ बिखरा पड़ा है, वैसा इस देश में ही नहीं, शायद पूरी दुनिया में अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ विभिन्न कुलों की अनगिनत भाषाएँ, अनगिनत लोग तथा अनगिनत संस्कृतियाँ ऐसा बहुरंगी वितान रचती हैं कि देखने-समझनेवाला मोहित होकर रह जाता है। दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्र के लिए तो यह भारतीय संस्कृति का न केवल मुख्य द्वार बल्कि एक संगम-स्थल है। इस छोटे-से क्षेत्र में 220 से अधिक जनजातियों के लोग निवास करते हैं, और जितनी जनजातियाँ, उतनी भाषाएँ और उतनी ही संस्कृतियाँ। प्रकृति ने तो मानो अपना पूरा ख़ज़ाना ही यहाँ बिखेर दिया हो। अकेले इस क्षेत्र में 51 प्रकार के वन और असंख्य प्रकार की पादप जातियाँ हैं। नदियों, पहाड़ों, झरनों से भरा यह प्रदेश प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक की नवीनतम संस्कृतियों को अपने में समेटे है।



यह वास्तव में हिमाचल के दक्षिण व उत्तर एवं ब्रह्मपुत्र के पूर्व एवं पश्चिम की तमाम जनजातियों, भाषाओं तथा संस्कृतियों का संगम-स्थल रहा है। चीन से भारत तक सर्वाधिक व्यवहृत सांस्कृतिक राजमार्ग इसी क्षेत्र से होकर गुजरता रहा है। इस क्षेत्र ने प्रहरी का भी काम किया है और सेतु का भी। प्राकृतिक वैभव में तो यह विश्व का अद्वितीय क्षेत्र है ही, सांस्कृतिक व भाषाई विविधता में भी इसका एक कीर्तिमान है।

सेतु : उत्तर-पूर्व

भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र की ब्रह्मपुत्र-घाटी का सांस्कृतिक व राजनीतिक इतिहास लगभग उतना ही पुराना है जितना पश्चिमी भारत की सिंधु-घाटी, मध्य भारत की गंगा-नर्मदा घाटी तथा दक्षिण भारत की कृष्णा-कावेरी घाटी का है। यह क्षेत्र दक्षिण एशिया की मध्य भूमि से कुछ अलग-थलग रहा है इसलिए यह इतिहास में उसके समकक्ष स्थान नहीं बना सका, किंतु यदि यथार्थ की भूमि पर तुलना की जाए तो यह क्षेत्र अपनी विविधता में दक्षिण एशियाई किसी भी अन्य क्षेत्र से कहीं अधिक समृद्ध है। यह वास्तव में हिमाचल के दक्षिण व उत्तर एवं ब्रह्मपुत्र के पूर्व एवं पश्चिम की तमाम जनजातियों, भाषाओं तथा संस्कृतियों का संगम-स्थल रहा है। चीन से भारत तक सर्वाधिक व्यवहृत सांस्कृतिक राजमार्ग इसी क्षेत्र से होकर गुजरता रहा है। इस क्षेत्र ने प्रहरी का भी काम किया है और सेतु का भी। प्राकृतिक वैभव में तो यह विश्व का अद्वितीय क्षेत्र है ही, सांस्कृतिक व भाषाई विविधता में भी इसका एक कीर्तिमान है। इसके करीब 2 लाख 62 हज़ार वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में करीब 220 जनजातियों के लोग निवास करते हैं, जिनकी लगभग इतनी ही भाषाएँ हैं। इसके राज्यों (असम, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा, नागालैंड, अरुणाचल-प्रदेश, मणिपुर तथा सिक्किम) के पहाड़ी क्षेत्रों में वनवासियों के एकसाथ जितने नमूने देखे जा सकते हैं, उतने अन्यत्र दुर्लभ हैं। इनके अलावा इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में तिब्बत, बर्मा (म्यांमार), थाईलैण्ड, पश्चिम बंगाल तथा बांग्लादेश से आए तमाम लोग यहाँ बसे हुए हैं जो अपने साथ अपनी भाषा, संस्कृति भी लेकर आए हैं। यदि कुछ जनजातियों के नाम गिनाए जाएँ तो शायद इनका कुछ अंदाजा लगे। इस क्षेत्र की मुख्य जनजातियों में असमी, नोआतिया, जमातिया, मिजो, रियांग, नगा, लुसाई, बंगाली, चकमा, भूटिया, बोडो, डिमसा, गारो, गुरुंग, हजार, बियाटे, हाजोंग, खम्प्ती, करबी, खासी, कोच राजबोंग्सी (राजबंशी), कुकी, लेप्चा, मेइतेई, मिशिंग, चेत्री, नेपाली, पाइती, प्रार, पूर्वोत्तर मैथिली, रमा, सिग्फो, तमांग, तिवा त्रिपुरी तथा जेमे नगा आदि की गणना की जाती है।

सन् 2011 की जनगणना के अनुसार इस क्षेत्र में करीब चार करोड़ सतासी लाख नौ सौ बयासी लोग निवास करते हैं जो भारत की कुल जनसंख्या के मात्र 3.8 प्रतिशत हैं। इसमें से करीब 64 प्रतिशत जनसंख्या (3 करोड़ 11 लाख से अधिक) अकेले असम में रहती है। असम में जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर 13 से लेकर 340 तक है। पूरे क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 160 है। पूरे क्षेत्र की 84 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है और गाँवों में रहती है। इस क्षेत्र में शिक्षा की दर (68.5 प्रतिशत) देश के बाकी हिस्सों की दर (61.5 प्रतिशत) से कहीं आगे है। जाहिर है इसके लोगों को



असम



असम को 'पूर्वोत्तर भारत का प्रवेश-द्वार' कहा जाता है। यों इस क्षेत्र के कुछ इलाकों को छोड़ दें, तो लगभग पूरा उत्तर-पूर्व असम ही है। असम के सांस्कृतिक व भाषाई वैविध्य को एक छोटे आलेख में समेट पाना प्रायः असंभव है। यहाँ मंगोलियन, इण्डो-ईरानी, इण्डो बर्मीज, तिब्बतो-बर्मी नस्लों और इनके भाषा-समूहों के लोग परस्पर गुंथे हुए हैं। उनकी मूल संस्कृतियों व भाषाओं के साथ उनके मिश्रण से बनी भाषा-संस्कृतियों की भी अच्छी व्याप्ति है।

इस राज्य में असमिया-भाषा बोलनेवालों हिंदुओं की संख्या लगभग दो-तिहाई है। राज्य में करीब 16 प्रतिशत आदिवासी जनजाति के लोग हैं। यहाँ बाहरी क्षेत्रों से आए लोगों की संख्या 40 प्रतिशत से अधिक है। मैदानी जनजाति में बोडो की संख्या सबसे बड़ी है। ये हिंदू धर्मावलंबी हैं। यह क्षेत्र बार-बार मुग़लों के हमले का शिकार हुआ। कहा जाता है कि इस क्षेत्र पर उनके 17 हमले हुए, लेकिन यहाँ के निवासियों ने अपनी संस्कृति और स्वायत्तता को बचाए रखा। आज भी बहुसंख्यक असमी वैष्णव हैं। हाँ, बाहरी घुसपैठ के कारण मुस्लिमों की जनसंख्या एक चौथाई से भी अधिक हो गई है।

असम अपने कला-कौशल, संगीत, नृत्य आदि में भी बहुत समृद्ध है। रेशमी व सूती वस्त्र, धातुओं तथा बाँस और बेंत की वस्तुओं के निर्माण में असमी अत्यंत कुशल हैं। चित्रकला की तो यहाँ बहुत पुरानी परंपरा है। 7वीं शताब्दी में यहाँ आए चीनी-यात्री ह्वेनत्सांग ने इसका ज़िक्र किया है। कामरूप के राजा भास्करवर्मन ने कई चित्र-पट्टिकाएँ व कलात्मक वस्तुएँ मध्यदेश के सम्राट् हर्षवर्धन को भेंट की थीं। यहाँ के नृत्य-संगीत की विश्वभर में प्रसिद्धि है। असम का सबसे महत्त्वपूर्ण त्यौहार बिहू है। यह नाचने-गाने, खाने-पीने और मौज़-मस्ती करने का त्यौहार है, जो पूरे असम में मनाया जाता है। दुनिया में जहाँ कहीं भी कोई असमी समुदाय हो, वह बिहू अवश्य मनाता है।

यह शायद कम लोगों को मालूम हो बिहू के तीन त्यौहार होते हैं। मकर संक्रान्ति के अवसर पर मध्य जनवरी या माघ के महीने में माघी बिहू मनाया जाता है। इसे 'भोगाली बिहू' भी कहते हैं। भोगाली माने भोग करना यानी खाना-पीना। इससे पूर्व कार्तिक मास यानी अक्टूबर के मध्य में 'कंगाली बिहू' मनाया जाता है। कंगाली यानी गरीबी। यह वह अवसर होता है, जब अभी नयी फसल तैयार नहीं रहती और पुराने अनाज के भण्डार खाली हो चुके रहते हैं। तीसरा बीहू अप्रैल के मध्य बोहाम (यानी बैसाख) के महीने में मनाया जाता है। इसे बोहागी यो रोंगाली (रंगीन) बिहू कहा जाता है। इन तीनों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बैसाख का रोंगाली बिहू है। यह पूरे बैसाखभर चलता है। इसमें बिहू-नृत्य की प्रतियोगिताएँ होती हैं तथा 'बोहागी कुंवरि' का चयन किया जाता है। यहाँ के बोडो जनजाति का समूह नृत्य भी बहुत प्रसिद्ध है, लेकिन बिहू ऐसा उत्सव है, जिसमें लगभग पूरा असमी समाज शामिल हो जाता है।

मेघालय

इक्कीस जनवरी, 1972 को असम के दो ज़िलों– खासी हिल्स और जयंतिया हिल्स– के साथ गारो हिल्स को मिलाकर मेघालय राज्य का निर्माण किया गया। 19वीं शताब्दी में इस पूरे क्षेत्र पर अंग्रेज़ों का आधिपत्य कायम होने से पूर्व खासी, गारो एवं जयंतिया जनजातियों का अपना स्वतंत्र राज्य था। 1835 में ब्रिटिश शासन ने मेघालय को असम में शामिल कर लिया। स्वतंत्रताप्राप्ति के समय 1947 में मेघालय असम के दो ज़िलों तक सीमित था और उसे असम राज्य के अंतर्गत सीमित स्वायत्तता प्राप्त थी। मेघालय में खासी जनजाति सर्वाधिक संख्या में है। दूसरा स्थान गारो जातियों का है। नागालैण्ड एवं मिज़ोरम के बाद मेघालय तीसरा ऐसा राज्य है, जो आदिवासी या जनजातीय समुदायवाला कहने से यह अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि वे निरक्षर, अज्ञानी तथा असहाय लोग हैं। वे पूरे देश के औसत जनसमुदाय के मुकाबले कहीं अधिक शिक्षित, जागरूक तथा प्रगतिशील हैं।

इस क्षेत्र का प्राचीन इतिहास रामायण एवं महाभारत-काल से जुड़ा है। महाभारत की कथा से लगता है कि ईसा से पूर्व यहाँ निश्चय ही कोई बड़ा साम्राज्य रहा होगा। महाभारत व रामायण में इस क्षेत्र के दो नाम मिलते हैं– प्राग्ज्योतिषपुर और कामरूप। प्राग्ज्योतिषपुर-नरेश नरकासुर की कहानियाँ





ईसाई-बहुल है। यहाँ की 70.3 प्रतिशत जनसंख्या ईसाई है। हिंदुओं का स्थान दूसरा (13.3 प्रतिशत) है और एक अच्छी-खासी संख्या प्रकृतिपूजकों की है। 1991 में जब यहाँ ईसाइयों की संख्या अभी 65 प्रतिशत (करीब 11 लाख) ही थी, तभी उन्होंने इसे एक ईसाई राज्य घोषित कर दिया। मेघालय की एक उल्लेखनीय बात है कि यहाँ की अधिकांश जनजातियाँ मातृसत्तात्मक हैं। यहाँ वंश-परंपरा तथा उत्तराधिकार स्त्रियों से चलता है। यह परंपरा थोड़े भेद से खासी, जयंतिया एवं गारो– तीनों में प्रचलित है। यहाँ परिवार की छोटी बेटी सारी संपत्ति की उत्तराधिकारिणी होती है और परिवार के बूढ़े तथा बच्चों के पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी उसकी ही होती है।

इस क्षेत्र का नाम ही मेघालय है, ज़ाहिर है बादलों का सबसे दीर्घकालीन डेरा यहाँ रहता है। देश में सर्वाधिक वर्षावाला क्षेत्र चेरापूँजी इसी राज्य में स्थित है। नृत्य-संगीत सभी जनजातियों की जीवनशैली का अनिवार्य अंग है तो मेघालय भी उसका अपवाद नहीं है।

पुराणों में अति प्रसिद्ध हैं। इस असुर नरेश को कृष्ण ने युद्ध में मारा था और उसकी कैद से 16,100 राजकन्याओं को मुक्त कराया था। इस नरेश के बेटे भगदत्त ने महाभारत-युद्ध में कौरवों के पक्ष में युद्ध किया था। असम का पहला ज्ञात ऐतिहासिक साम्राज्य 'कामरूप' के नाम से जाना जाता है। यह साम्राज्य ईसवी सन् 350 से लेकर 1140 तक करीब 800 वर्षों तक कायम रहा, जिसके दौरान तीन राजवंशों ने शासन किया। कामरूप का प्रथम पुरातात्त्विक साक्ष्य चौथी शताब्दी के गुप्त नरेश समुद्रगुप्त के इलाहाबाद प्रस्तर स्तंभाभिलेख में मिलता है। 7वीं शती में भारत आए चीनी यात्री ह्वेनत्सांग के समय कामरूप पर भास्करवर्मन का शासन था। बौद्ध-धर्म की महायान शाखा उसके साथ ही यहाँ पहुँची थी। उसके पहले बौद्ध-धर्म का प्राचीन हीनयान संप्रदाय ही यहाँ प्रचलित था। 10वीं शती में रचित माने जानेवाले कालिकापुराण में कामरूप की पूर्वी सीमा पर ताम्रेश्वरी देवी के मन्दिर का ज़िक्र किया गया है **(पूर्वांत कामरूपस्य देवी दिक्करवासिनी)**। 12वीं शताब्दी के बाद इस साम्राज्य का तो अंत हो गया, लेकिन कामरूप राज्य बना रहा। 15वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में इस राज्य पर हमला करनेवाले अलाउद्दीन हुसैन शाह के सिक्के पर 'कामरू' या 'कामरूद' नाम अंकित है। आज भी इस नाम का ज़िला (कामरूप) यहाँ विद्यमान है। अत्यंत प्राचीन काल से यह क्षेत्र पूर्वी एशिया के देशों के साथ भारत को जोड़ने का प्रधान सेतु था। इधर से होकर ही भारतीय सभ्यता और संस्कृति लवदेश, कम्बुज व वियतनाम तक पहुँची। भारतीय व्यापारी यों समुद्री मार्ग का भरपूर उपयोग करते थे, किंतु थलमार्ग सबके लिए सर्वाधिक सुभीते का मार्ग था। चीनी-अन्वेषक चांग किन ने करीब 100 ईसा पूर्व में पहली बार इस क्षेत्र का ज़िक्र किया है।

उत्तर-पूर्व के ये राज्य प्रकृति के अद्भुत वरदान से संपन्न हैं। जैव विविधता की दृष्टि से यह दुनिया के सर्वाधिक संपन्न इलाकों में से एक है। इस इलाके में 51 प्रकार के वन हैं, जिन्हें मोटे तौर पर 6 बड़े वर्गों में बांट दिया गया है। ये हैं– 1. उष्ण कटिबंधीय नम पर्णपाती (जिनकी पत्तियाँ पतझड़ में झड़ जाती हैं) वन, 2. उष्ण कटिबंधीय अर्ध सदाबहार (सेमी एवर ग्रीन) वन, 3. उष्ण कटिबंधीय बरसाती सदाबहार वन, 4. उपोष्ण कटिबंधीय वन, 5. शुष्क वन तथा 6. अल्पाइन वन। भारत की 9 प्रमुख पादप प्रजातियों में से 6 उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में पाई जाती हैं। पुष्पित होनेवाले पौधों की 80 हजार प्रजातियों में से 15,000 प्रजातियाँ यहाँ के राज्यों में पाई जाती हैं। सर्वाधिक पुष्पीय पादप प्रजातियाँ (5,000) अरुणाचलप्रदेश में उपलब्ध हैं। उसके बाद दूसरा स्थान सिक्किम (4,500) का है। भारत के बॉटनिकल सर्वे विभाग द्वारा जारी पुस्तिका (रेड डाटा बुक) के अनुसार इस देश के 10 प्रतिशत पुष्पीय पादप विलुप्ति के कगार पर हैं। खतरे में पड़े कुल करीब 1,500 पुष्पीय पादपों में 800 उत्तर-पूर्व भारत में हैं। उत्तर-पूर्व भारत 'भारत बर्मा' 'हॉट स्पॉट' का हिस्सा है। यह 'हॉट स्पॉट' में मेडीटेरेनियन बेसिन के बाद



नागालैण्ड



नागालैण्ड लगभग पूरा पहाड़ी क्षेत्र है। साहसी पर्यटकों के लिए बड़ी शानदार जगह है। इस राज्य को 'उत्तर-पूर्व का स्विट्जरलैंड' कहा जाता है। 'नागा'– यह नाम उन्हें मैदानी लोगों ने दिया है। शायद पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण उन्हें यह नाम मिला। संस्कृत में पहाड़ को नग भी कहते हैं, इसलिए वहाँ रहनेवाले नागा हो गये। नागाओं की जातियाँ हैं। सबके अलग-अलग परिधान हैं, जिनसे उनकी पहचान हो जाती है। इनके रंगीन कपड़े ज्यादातर मोटे ऊन के बने होते हैं, लेकिन उनकी खूबसूरती दर्शनीय होती है। ये अपने साथ कुछ हथियार भी रखते हैं, जो परिधान के ही अंग बन जाते हैं।

नागालैण्ड का लिखित इतिहास 19वीं शताब्दी से मिलता है, जब ब्रिटिश यहाँ आये। नागालैंड अपने 'कोहिमा वॉर' के लिए भी प्रसिद्ध है। उत्तर-पूर्वी भारत की यही वह जगह है, जहाँ द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 1944 में जापानी फौजों को रोका गया था। यह युद्ध 4 अप्रैल से 22 जून 1944 तक चला था। जापानियों को मिली निर्णायक हार के कारण इसे 'पूर्व का स्टालिन गार्ड' भी कहा जाता है। इस क्षेत्र में अंग्रेज़ों के समय से ही अमेरिकी व यूरोपीय ईसाई-मिशनरियाँ सक्रिय हो गई थीं, इसलिए यह राज्य ईसाई-बहुल है और यहाँ की मुख्य भाषा अंग्रेज़ी है। राज्य में साक्षरता का स्तर 60 प्रतिशत से अधिक है।

इस राज्य की जनसंख्या करीब 20 लाख है। 01 दिसंबर, 1963 को यह असम से अलग होकर एक अलग राज्य के रूप में अस्तित्व में आया। नागा एक सरल लेकिन बहादुर जाति है। अंग्रेज़ों ने प्रथम विश्वयुद्ध में उन्हें अपनी सेना में भर्ती किया था और फ्रांस भेजा था। बाहर निकलने के अनुभवों से नागाओं में एक नयी चेतना आयी। सेना में भर्ती होकर फ्रांस गये नागा युवक जब 1918 में वापस लौटे, तो उन्होंने नागा नेशनलिस्ट आंदोलन प्रारंभ किया। देश जब स्वतंत्र हुआ और नागा क्षेत्र भारत राष्ट्र का अंग बन गया, उस समय भी यह आंदोलन जारी था। फिजो उस समय (1947 में) नागा नेशनल कौंसिल के अध्यक्ष थे। आंदोलन तेज होने पर 1955 में वहाँ सेना भी भेजनी पड़। बाद में सरकार के साथ समझौता हो गया और 1966 में वह एक अलग राज्य बन गया।

नागा लोग सुंदर और मिलनसार प्रकृति के होते हैं। देहयष्टि पर मंगोल-प्रभाव स्पष्ट है, लेकिन इनकी आँखें मंगोलों-जैसी नहीं होतीं। वे बादाम के आकार की होती हैं। नागा नाचने-गाने के शौक़ीन तथा उत्सवप्रिय होते हैं।



दूसरा सबसे बड़ा क्षेत्र है। इस क्षेत्र में बड़े संरक्षित वन या राष्ट्रीय उद्यान हैं।

भाषा की दृष्टि से इस क्षेत्र की भाषा के तीन मुख्य विभाग कर सकते हैं। एक तो असमिया, दूसरी 'तिब्बती बर्मन' भाषाएँ और तीसरी बांग्ला। असमिया के उपयोग का पहला प्रमाण 900 ई. से मिलता है। बौद्धग्रंथ चर्यापद में इसका उल्लेख आया है। वैसे त्रिपुरा में बांग्ला-भाषा का वर्चस्व है। त्रिपुरा के रियासत की राजकाज की भाषा बांग्ला थी, क्योंकि पूर्वी बंगाल में त्रिपुरा के राजा की ज़मींदारी थी। त्रिपुरा में बांग्लादेशी घुसपैठ ने भी बांग्ला-वर्चस्व को बढ़ाया। आज की स्थिति में बांग्लादेशी मुसलमानों ने त्रिपुरा के मूल निवासियों को अल्पसंख्यक बना दिया है। असम के भी एक-तिहाई लोगों की भाषा बांग्ला है। नागालैण्ड, मणिपुर तथा अरुणाचल में भी बांग्लाभाषी लोग बसे हैं। मेघालय को उत्तर-पूर्व भारत का स्कॉटलैण्ड कहा जाता है, यहाँ भी बांग्ला का अच्छा-ख़ासा प्रभाव है। अन्य प्रमुख भाषाएँ हैं– नागा, मणिपुरी, मिज़ो, काकबोरोव, खसिया और अरुणाचली।



आइए, उत्तर-पूर्व क्षेत्र के इन राज्यों के सांस्कृतिक जीवन पर अलग-अलग एक उड़ती नज़र डालें।

मिजोरम



मिजोरम देश का अकेला राज्य है, जहाँ कोई बेघर नहीं है। यहाँ साक्षरता-दर केरल के बाद सबसे ऊँची 95.68 प्रतिशत से ऊपर है। स्वच्छता का स्तर भी करीब 93.4 प्रतिशत है। शहरीकरण में मिजोरम देश में दूसरे स्थान पर है। छोटे से राज्य में 22 शहर या कस्बे हैं। मिजोरम शब्द का अर्थ है पहाड़ी लोगों का घर (मी-लोग, जो-पहाड़ी, रम-देश)। मिजोरम पहाड़ियों का 'मोजैक' हैं। 21 बड़ी पहाड़ियाँ हैं, बीच-बीच में छोटे-छोटे मैदान हैं। यहाँ की सबसे बड़ी नदी छिमतुई पुई है, जो म्यांमार के चिन राज्य से निकलती है और मिजोरम के क्षेत्र से होते हुए फिर म्यांमार में प्रवेश कर जाती है और वहाँ से बंगाल की खाड़ी में जा गिरती है। इस नदी का बड़ा व्यापारिक महत्त्व है। म्यांमार के साथ व्यापार में इसे जलमार्ग की तरह इस्तेमाल किया जाता है।

मिजो लोग मूलतः कौन हैं, कहाँ से आए इसका कोई ठीक-ठीक पता नहीं। उत्तर-पूर्व की तमाम जनजातियों की तरह इनका भी इतिहास अंधेरे की चादर में ढका है। 18वीं शताब्दी की कहानियाँ स्थानीय कबीला सरदारों के एक-दूसरे पर हमले से जुड़ी हैं। ब्रिटिश इण्डिया ने पहली बार एक घोषणा-पत्र जारी करके 1895 में मिजो पहाड़ी क्षेत्र को ब्रिटिश राज्य का अंग बना लिया। 1898 में उत्तर और दक्षिण की पहाड़ियों को मिलाकर 'लुसाई हिल्स' ज़िले का निर्माण हुआ और अइजवाल इसका मुख्यालय बना। 1952 में पहली बार 'लुसाई हिल्स ऑटोनमस डिस्ट्रिक्ट कौंसिल' की स्थापना हुई। इसके द्वारा सरदारों (चीफटेन्स) की परंपरा का अंत हो गया। इस कौंसिल से स्थानीय लोगों की आकांक्षा पूरी होनेवाली नहीं थी, इसलिए लोगों ने 1954 में राज्य पुनर्गठन आयोग से अपील की कि वह त्रिपुरा और मणिपुर के मिजो बहुल इलाके को लेकर उनका अलग राज्य बनाए। राज्य पुनर्गठन आयोग से असंतुष्ट मिजो-नेताओं ने 1955 में ईस्टर्न इण्डिया ट्रायबल यूनियन नामक एक संगठन बनाया, जिसने असम के पूरे पहाड़ी क्षेत्रों को मिलाकर एक राज्य बनाने की मांग की। 1959 में मिजो क्षेत्र में भारी अकाल पड़ा। मिजो-इतिहास में इसे 'मौतम अकाल' के नाम से जाना जाता है। इस अकाल का कारण बाँस के जंगलों का फूलना-फलना था। बाँस के जंगल करीब 50 साल में एक बार फूलते हैं और उसमें भारी मात्रा में चावल-जैसे बीज निकलते हैं। ये चावल काफ़ी पौष्टिक होते हैं। इस चावल के कारण जंगल में काले रंगवाले चूहों की बाढ़ आ गयी। ये चूहे गाँवों की सारी फसल चट कर गये, जिससे भारी अकाल पड़ा। लोग बाहर भागने लगे। कुछ जंगल की जड़ व पत्तियाँ खाने को मज़बूर हुए और बड़ी संख्या में लोग भोजन के अभाव में मौत के शिकार हुए। इस दौरान लोगों की सहायता करने के लिए कई संगठन बने। मिजो कल्चरल सोसायटी नामक एक संगठन बहुत पहले 1955 में बना था, जिसके नेता लाल डेंगा थे। 1959-60 के अकाल के दौरान इसने अपना नाम बदलकर 'मौतम फ्रंट' कर लिया। अकाल-पीड़ितों को राहत पहुँचाने में इस संगठन ने बड़ी भूमिका अदा की। सितंबर 1960 में इस संगठन ने अपना नाम 'मिजो नेशनल फेमिन फ्रंट' रखा। इस फ्रंट ने सहायता-कार्य में काफ़ी लोकप्रियता अर्जित की। बाद में लाल डेंगा ने इसमें से 'फेमिन' शब्द हटा दिया और 22 अक्टूबर, 1961 को 'मिजो नेशनल फ्रंट' के नाम से एक संगठन सामने आया, जिसके नेता लाल डेंगा थे और जिसका लक्ष्य था 'स्वतंत्र ग्रेटर मिजोरम' की स्थापना। इसने अपनी मांग मनवाने के लिए 28 फरवरी, 1966 से सरकार के विरुद्ध हिंसा को सहारा लिया।1967 में मिजो नेशनल फ्रंट को ग़ैर-क़ानूनी संगठन घोषित कर दिया गया। इसके बाद अलग राज्य की मांग और तेज हो गयी। 'मिजो डिस्ट्रिक्ट कौंसिल' का प्रतिनिधिमण्डल प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी से मिला और मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्ज़ा देने की मांग की। इंदिरा गाँधी सरकार ने उन्हें केंद्रशासित राज्य का दर्ज़ा देने का प्रस्ताव किया। लाल डेंगा ने इस शर्त पर इसे मान लिया कि आगे फिर पूर्ण राज्य का दर्ज़ा दे दिया जाएगा। 21 जनवरी, 1972 को मिजोरम केंद्रशासित राज्य बना। और फिर राजीव गाँधी के शासनकाल में 20 फरवरी, 1987 को उसे पूर्ण राज्य का दर्ज़ा मिला। इसके बाद से मिजोरम अब एक शांत क्षेत्र है।

यह जानना रोचक होगा कि मिजो जीवनशैली सामाजिक जीवन का एक आदर्श है। उनकी एक विशेष जीवन-पद्धति है, जिसमें दया, करुणा, निःस्वार्थ सेवा, उदारता तथा अपने पूरे समाज के प्रति समभाव का व्यवहार अनिवार्य कर्तव्य है। मिजो दूसरों के हित में आत्मबलिदान को श्रेष्ठ सामाजिक मूल्य मानते हैं। मिजो परस्पर बड़ी सघनता के साथ जुड़ा समाज है। वहाँ लैंगिक भेदभाव नहीं है। पूरा गाँव एक बड़े परिवार की तरह व्यवहार करता है। जन्म, मृत्यु, विवाहादि में पूरा गाँव शामिल होता है। गीत, संगीत, नृत्य में भी उनकी गहरी रुचि है। वे बिना वाद्ययंत्रों के भी ताली की आवाज़ पर गा लेते हैं। करीब 87 प्रतिशत मिजो ईसाई हैं, क्योंकि ईसाई-मिशनरियाँ यहाँ 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में ही पहुँच गई थीं। इस क्षेत्र के लोग ज्यादातर प्रकृतिपूजक थे। उन्हें ईसाइयत की तरफ मोड़ना आसान था। दूसरा स्थान बौद्धों (करीब 8 प्रतिशत) का है। हिंदू 3.55 प्रतिशत हैं और राज्य में उनकी कहीं कोई पहचान नहीं है।



त्रिपुरा



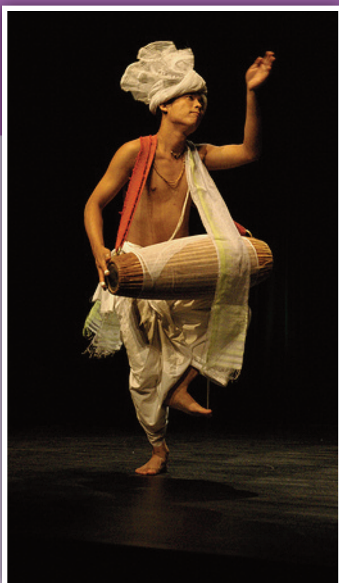
महामाया त्रिपुरसुंदरी की भूमि त्रिपुरा देश का तीसरा सबसे छोटा राज्य (10,492 वर्ग किमी) है, जो तीन तरफ से बांग्लादेश से घिरा है, केवल इसके पूर्व में इसकी सीमा असम एवं मिजोरम से जुड़ती है। आधुनिक त्रिपुरा प्राचीन त्रिपुरी राज्य का हिस्सा है। भारत में ब्रिटिश राज के समय यह एक स्वतंत्र रियासत थी। 1949 में यह भारत में शामिल हुआ और इसे केंद्रशासित राज्य का दर्ज़ा मिला। त्रिपुरा भारत का इतिहासप्रसिद्ध क्षेत्र है। इसका ज़िक्र रामायण, महाभारत के साथ अशोक के अभिलेख में भी मिलता है। इसका पुराना नाम 'किरात' राज्य है। त्रिपुरा के राजवंश की एक लंबी परंपरा है। 'राजमाला' (पंद्रहवीं शताब्दी का ग्रंथ) में 179 राजाओं का वर्णन है। 13वीं शताब्दी से यहाँ मुस्लिम हमले शुरू हो गये। अंततः 1733 में इसके मैदानी क्षेत्र पर मुग़ल-प्रभुत्व कायम हो गया, किंतु पहाड़ी क्षेत्र कभी मुग़लों के आधिपत्य में नहीं आया। देश के स्वतंत्र होने पर 1947 में ब्रिटिश इण्डिया का त्रिपुरा ज़िला पूर्वी पाकिस्तान में शामिल हो गया, किंतु पहाड़ी त्रिपुरा 1949 तक स्वतंत्र रहा।



त्रिपुरा की सीमाएँ बार-बार बदलती रही हैं। इसकी जनसंख्या का बड़ा हिस्सा बांग्लाभाषियों का है, जो देश के विभाजन के बाद पूर्वी पाकिस्तान से शरणार्थी के रूप में आये। विभाजन के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र की पूरी अर्थव्यवस्था चौपट हो गयी। अपने ही देश में नगरों के बीच दूरियाँ बढ़ गयीं। कलकत्ता से अगरतला के बीच सड़क-मार्ग की जो दूरी विभाजन के पहले 350 किमी थी, वह विभाजन के बाद 1,700 किमी हो गयी। 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद 21 जनवरी, 1972 को मेघालय और मणिपुर के साथ त्रिपुरा को भी पूर्ण राज्य का दर्ज़ा मिला।

त्रिपुरा एक मिश्रित संस्कृतिवाला राज्य है। ग़ैर-आदिवासी संस्कृतियों में बांग्ला संस्कृति की प्रधानता है। बांग्ला साहित्य का भी बड़ा समादर है। यहाँ के राजा के राजकाज की भाषा बांग्ला ही थी, इसलिए बांग्ला को पूरा राज्याश्रय मिला। त्रिपुरा के संगीत, नृत्य के भी अनेक रूप हैं। यहाँ की वेशभूषा भी रंगीन और आकर्षक है। यहाँ की एक अत्यंत रोचक वस्तु है चट्टानों पर उत्कीर्ण असंख्य मूर्तियाँ, जो ज्यादातर शिव की हैं। कहा जाता है कि उनकोटि में एक कम एक करोड़ ऐसी मूर्तियाँ हैं। इनको किसने बनाया, ये कैसे बनीं, इसको लेकर अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हैं।

मणिपुर



मणिपुर में 60 प्रतिशत आबादी मेइतेई-प्रंगाल जनजाति की है, किंतु आश्चर्य है कि राज्य की कुल ज़मीन का केवल 10 प्रतिशत ही उनके पास है। बाकी नागा, कुकी, जोमिस आदि छोटे गुटों की आबादी राज्य की कुल आबादी की 40 प्रतिशत है। लेकिन राज्य की 90 प्रतिशत ज़मीन के मालिक ये छोटे समुदायवाले हैं। मणिपुर क्षेत्र अपने इतिहास काल में अनेक नामों से पुकारा जाता रहा। एक दो नहीं बल्कि 20-25 नामों से। मेइती या मेइतेई से जुड़े नाम मेइत्राबाक, मेइत्रिलेपीपाक के साथ और विविध प्रकार के नाम। मगर 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इस क्षेत्र के राजा भाग्यचंद तथा उनके वंशजों के चलाए सिक्कों पर 'मणिपुरेश्वर' का नाम अंकित है। इसके ही आधार पर इसका नाम मणिपुर चल पड़ा। मणिपुर 1891 में ब्रिटिश शासन में एक रियासत (प्रिंसली स्टेट) के रूप में शमिल हुआ और भारतीय संघ में शामिल होने के समय तक इसी रूप में था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान मणिपुर जापानी फौज़ों और मित्र राष्ट्रों के बीच घमासान का साक्षी बना। भारतीय संघ में शामिल होने के बाद मणिपुर 1956 में केंद्रशासित राज्य बना। यह स्थिति 1972 तक रही, जब उसे पूर्ण राज्य का दर्ज़ा मिला।

इस राज्य की जनसंख्या का करीब 59 प्रतिशत घाटी में है और 41 प्रतिशत

सिक्किम





पारंपरिक कथाओं के अनुसार बौद्ध संत गुरु रिंपोछे ईसा की 8वीं शताब्दी में कभी इस क्षेत्र में पहुँचे। उस समय वहाँ कोई राजा नहीं था। उन्होंने इस क्षेत्र में रहनेवालों को बौद्ध-धर्म की दीक्षा दी तथा भविष्यवाणी की कि शताब्दियों बाद वहाँ संगठित राजसत्ता का युग शुरू होगा। सिक्किम के इतिहास का ज्ञात राजवंश 1642 में स्थापित हुआ। इसके पहले और शायद गुरु रिंपोछे के आने के पहले, किसी तिब्बती राजवंश ने इस पर आधिपत्य जमाया था, लेकिन वह अधिक समय तक टिक नहीं सका। नांग्याल-वंश के काल में नेपाल की तरफ से अक्सर हमले होते रहते थे। अंततः 19वीं शताब्दी में उसने भारत के ब्रिटिश शासकों से तालमेल बैठाया, किंतु ब्रिटिश शासकों ने जल्दी ही सिक्किम को अपना संरक्षित राज्य बना लिया।

उत्तर-पूर्व का यह अकेला नेपाली बहुल राज्य है। नस्ली तथा भाषाई विविधता इतनी है कि यहाँ 11 सरकारी भाषाएँ हैं। नेपाली मुख्य संपर्क-भाषा है और उसके अलावा भूटिया, लेप्चा, लिंबू, नेवारी, राई, गुरुंग, मंगर, शेरपा, तमांग, सुंवर भी मान्यता प्राप्त हैं। यहाँ का मुख्य धर्म हिंदू है। दूसरा स्थान बौद्ध वज्रयान धर्म का है। राजधानी गंगतोक एकमात्र बड़ा शहर है और समझा जाता है इसकी स्थापना तिब्बती राजा ने की थी।

देश के स्वतंत्र होने पर सिक्किम तत्काल भारत में शामिल नहीं हुआ, लेकिन बाद में यहाँ की जनता राजशाही के विरुद्ध हो गई और अंततः राजशाही के विरुद्ध जनमत-संग्रह के उपरांत 1975 में इसे भारत में मिला लिया गया। सिक्किम गोवा के बाद देश का सबसे छोटा राज्य है और आबादी में भी यह सभी राज्यों से पीछे है। पारंपरिक गुंपा नृत्य यहाँ का सर्वाधिक प्रसिद्ध नृत्य है।



पहाड़ी क्षेत्रों में है। पहाड़ी इलाकों में नागा, कुकी, पाइते (जो भी) का कब्ज़ा है, तो मैदान में मेइती का। इस प्रदेश की मुख्य भाषा मेइती लन है। इसी को मणिपुरी का नाम भी दिया गया है। मणिपुरी-भाषा और साहित्य की स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई होती है। यह पूरे प्रदेश की आम संपर्क भाषा है।

मणिपुर अत्यंत समृद्ध संस्कृतिवाला राज्य है। यहाँ की हिंदू-जनसंख्या, वैष्णव-सम्प्रदाय से सर्वाधिक प्रभावित है। कृष्ण-भक्ति यहाँ के मैदानी क्षेत्र में जन-जन में व्याप्त है। मणिपुरी नृत्य तो पूरी दुनिया में प्रसिद्ध है और भारत के शास्त्रीय नृत्यों में इसका प्रमुख स्थान है। यह वास्तव में कृष्ण की रासलीला की अनुकृति है। केरल के कथकली नृत्य की तरह इसका परिधान भी अनूठा रहता है। यह अत्यंत कोमल, भावप्रधान तथा गौरवमय नृत्यशैली है। इसके साथ गाए जानेवाले गीत ज्यादातर जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, गोविन्ददास-जैसे भक्त-कवियों की रचनाएँ होती हैं।



अरुणाचलप्रदेश



अरुणाचल प्रदेश के अकेले एक इलाके में भाषा, संस्कृति एवं नस्लों की जितनी विविधता है, उतनी पूरे एशिया में अन्यत्र कहीं नहीं है। यहाँ के अधिकांश निवासी तिब्बत-बर्मी मूल के हैं और उनकी मुख्य भाषा भी उसी मूल की है। यहाँ की सारी भाषाओं की गणना व पहचान का काम भी बहुत कठिन है। करीब 50 से ऊपर भाषाएँ प्रचलन में हैं। प्रायः हर जनजाति की अपनी अलग भाषा है। बाहर के अन्य इलाकों से आए लोगों के कारण भाषा और जाति की समृद्धि और बढ़ गई है।

यह प्रदेश पहली बार सर्वाधिक चर्चा में तब आया, जब 1962 में चीन ने हमला किया। उस समय यह इलाका 'नेफा' (नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी) के नाम से जाना जाता था। भारत सरकार ने 1955 में इसका गठन किया था। 1962 के हमले के समय चीन ने नेफा के अधिकांश भाग पर कब्ज़ा कर लिया था, लेकिन बाद में उसने स्वयं एकतरफा युद्ध-विराम की घोषणा करके अपनी सेना को मैकमोहन लाइन तक पीछे हटा लिया था। यद्यपि उस मैकमहोन लाइन को चीन ने मान्यता नहीं दी थी, फिर भी उस समय उसने उसी लाइन का सम्मान किया। इस लाइन का निर्धारण ब्रिटिश सरकार और तिब्बत के बीच शिमला में हुई बैठक के बाद हुए समझौते में किया गया था। इस समझौते में ब्रिटिश इंडिया के प्रशासक सर हेनरी मैकमहोन ने 890 किमी की सीमा निर्धारित की। इस सीमा-निर्धारण में तावांग तथा तिबेतान का इलाका ब्रिटिश इण्डिया के क्षेत्र में दिखाया गया। चीन ने उस समय कोई आपत्ति नहीं की, लेकिन बाद में उसका दावा था कि तिब्बत चूँकि स्वतंत्र देश नहीं था, इसलिए उसे सीमा-संबंधी कोई समझौता करने का अधिकार ही नहीं था। खै़र, इसके बाद की कहानी लोगों को पता है, इसलिए उसकी विस्तृत चर्चा की जरूरत नहीं।

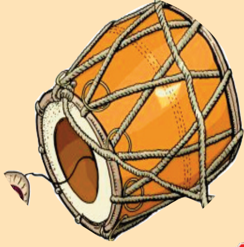
अरुणाचल में साक्षरता का स्तर करीब 66.95 प्रतिशत है। यहाँ के ज्यादातर मूल निवासी प्रकृतिपूजक हैं। तथापि हिंदू-धर्म माननेवालों की संख्या करीब 34.6 प्रतिशत है। तावांग व पश्चिमी कामेंग इलाके में बौद्ध-धर्म की थेरवादी शाखा का प्रभाव है। करीब 19 प्रतिशत ईसाई हैं। राज्य में अंग्रेज़ी-भाषा का प्रभुत्व है, किंतु हिंदी भी यहाँ काफ़ी लोकप्रिय है।

वास्तव में उत्तर-पूर्व का इलाका अनादिकाल से एक रहस्यमय क्षेत्र रहा है। यह रहस्यमयता कमोबेश आज भी बनी है। शाक्त उपासना, प्रकृति-पूजा एवं बौद्ध-वज्रयान की तांत्रिक साधना आदि के कारण इस क्षेत्र के बारे में अनेक कल्पित बातें देश की मुख्यभूमि में व्याप्त रहीं। आधुनिक काल में देश के स्वतंत्र होने के बाद भी हिंसक अशान्ति (ईसर्जेंसी) की ख़बरों के कारण देश के मुख्य भाग के लोग इस क्षेत्र की यात्रा भी बहुत कम करते रहे हैं, इसलिए मध्य देश या अन्य क्षेत्रों के निवासियों के साथ इस क्षेत्र की घनिष्ठता नहीं बन पायी। समय बदलने के साथ वातावरण बदल रहा है, इसलिए अब यह अधिक आवश्यक है कि उत्तर-पूर्व तथा शेष भारत के बीच आवागमन बढ़े। यह क्षेत्र अशान्ति और अलगाव का गढ़ न बने, इसके लिए भी आवश्यक है कि पूरे देश के विभिन्न क्षेत्रों की सांस्कृतिक साझेदारी बढ़े और आत्मीयता के सहज संबंध विकसित हों।













सतरंगी इन्द्रधनुष

भारत का उत्तर-पूर्वांचल





■ मोइरांगथेम प्रभा

शोधप्रज्ञ, जनजाति भाषा-साहित्य

आज की महानगरी गुवाहाटी नरकासुर की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर थी। असम का तेजपुर नगर शोणितपुर के नाम से भी जाना जाता है। यह बाणासुर की राजधानी रही।

हिमालय की ऊँची-ऊँची बर्फीली चोटियाँ, उन चोटियों से निःसृत होकर तीव्र वेग से ब्रह्मपुत्र नद की ओर कूदती नदियाँ, बादलों के बीच बसी बस्तियाँ, असंख्य पशु-पक्षी, पेड़-पौधों से भरे घने जंगल, कोसों दूर तक फैले चाय-बगान, रंग-बिरंगी वेश-भूषा में सज्जित लोग, चित्र-विचित्र बोली-भाषाएँ, पारंपरिक परिधान में वाद्ययंत्रों की धुन पर थिरकते युवा– ऐसा धरती पर स्वर्ग-भारत का ईशान्य क्षेत्र। इस पूर्वोत्तर दिशा में प्रवेश करने का सड़क व रेल मार्ग है– सिलिगुड़ी। यह पश्चिम बंगाल में है। यह एक बहुत ही संकरा गलियारा है। ऊपर नेपाल और नीचे बांग्लादेश की सीमाओं से दबे हुआ इस सामरिक स्थान को 'चिकन नेक' अर्थात् मुर्गे का गला कहते हैं। सिलिगुड़ी से आगे श्रीरामपुर रेलवे स्टेशन से असम की सीमा प्रारंभ होती है। भारत का पूर्वोत्तर भाग, जिसका क्षेत्रफल देश के कुल क्षेत्रफल का ८ प्रतिशत है, जिसकी ९८ प्रतिशत भूमि नेपाल, भूटान, चीन, म्यांमार और बांग्लादेश की अंतरराष्ट्रीय सीमाओं से सटी है– अत्यंत सामरिक महत्त्व एवं अति संवेदनशील क्षेत्र में ८ राज्य हैं। जिनमें से 5 पूर्णतः पर्वतीय व जनजातीय हैं। अरुणाचलप्रदेश, नागालैण्ड, मिजोरम, मेघालय और सिक्किम में कोई समतल भूमि नहीं है जबकि असम, त्रिपुरा और मणिपुर में मैदान और पहाड़– दोनों हैं। साल में लगभग छः महीने धुआँधार वर्षा के कारण सर्वत्र हरियाली दिखती है। पहाड़ों में झूम खेती और घाटी में पानी में होनेवाली खेती की जाती है। धान की खेती, सरसों, सब्जियाँ मुख्य रूप से उगाते हैं। ज़मीन बहुत उपजाऊ होने के कारण फसलें अच्छी हो जाती हैं। अदरक, हल्दी, इलायची-जैसे मसाले; अनानास, किवी, संतरे-जैसे फलों की खेती के लिए ज़मीन अत्यंत उपजाऊ है। केले, नारियल और गन्ना भी खूब होता है। अधिकतर लोग मांसाहारी होने के कारण मछलीपालन, मुर्गीपालन, बकरी, सूअर आदि का पालन सर्वत्र होता है। साधारण भोजन के लिए आवश्यक खाद्य-सामग्री के लिए पूर्वांचल क्षेत्र को परावलंबी होने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

रामायण और महाभारत काल के इतिहास से यहाँ का समाज जुड़ा हुआ है। सीता की खोज में वानरराज सुग्रीव ने अपनी सेना को चारों दिशाओं में भेजा। एक टुकड़ी जो पूर्व

दिशा में गयी, वह सुदूर पूर्वोत्तर में भी सीता को खोजने में लगी। लेकिन जब उसे सीता नहीं मिली तो वापस नहीं लौटी और वहीं बस गयी। ये किष्किन्धावासी कावेरी नदी के किनारे रहे थे। जब वे असम में छोटी-छोटी पहाड़ियों पर रहने लगे तो उनकी पहचान 'कावरी' शब्द से होती थी। 'कावरी' शब्द का ही रूपान्तरण 'कारबी' हुआ। कारबी आंगलांग में रहनेवाले कारबी जनजाति के लोग अपनी भाषा में रामायण गाते हैं। मिजो रामायण के अनुसार राम ने उन्हें धान की खेती सिखाई। कई साल पहले उत्तर-पूर्वांचल की जनजातियों में रामकथा नामक शीर्षक पर गुवाहाटी में आयोजित संगोष्ठी में आइजाल के एक मिजो प्रोफेसर ने इस तथ्य को प्रस्तुत किया। आज की महानगरी गुवाहाटी नरकासुर की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर थी। असम का तेजपुर नगर शोणितपुर के नाम से भी जाना जाता है। यह बाणासुर की राजधानी रही। श्रीकृष्ण का पौत्र एवं प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का विवाह बाणासुर की पुत्री उषा से हुआ। स्वयं श्रीकृष्ण ने अरुणाचलप्रदेश की ईदुमिश्मि जनजाति की राजकन्या रुक्मिणी का हरण किया। महाबली भीम ने डिमासा कारबारी राजा की बेटी हिडिम्बा से विवाह किया और उनका पुत्र महापराक्रमी घटोत्कच और उससे भी बड़ा योद्धा उनका पौत्र बर्बरीक हुए। अर्जुन ने नागकन्या उलूपि, मेघालय की प्रमीला और मणिपुर की राजकुमारी चित्रांगदा से विवाह किया। अर्जुन और चित्रांगदा के पुत्र प्रतापी बभ्रुवाहन ने स्वयं अपने पिता को ही परास्त किया। इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार करनेवाले परशुराम ने अरुणाचलप्रदेश के एक स्थान पर अपना परशु (कुल्हाड़ी) धोया था। वही स्थान 'परशुराम कुण्ड' के नाम से प्रसिद्ध है। घटोत्कच से लेकर 107 डिमासा राजाओं के नाम और बभ्रुवाहन से लेकर 104 मणिपुर राजाओं के नाम वंशावली में अंकित हैं। गुवाहटी में माँ कामाख्या का मन्दिर है जो 52 शक्तिपीठों में परिगणित है। असम का शिवसागर, अरुणाचल का तवांग मोनेस्ट्री, जीरो का 20 फुट ऊँचा शिवलिंग, लीकाबाली में मालिनीथान, तेजु में परशुराम कुण्ड, डिमासा-राजाओं की राजधानी नागालैण्ड का डिमापुर (हिडिम्बापुर), मणिपुर



बहुरंगी अति रमणीय प्रकृति की गोद में पलनेवाले उत्तर-पूर्वांचलवासी सालभर पर्व-त्योहार मनाते हुए मस्ती में रहते हैं। सभी स्त्री-पुरुष, युवक-युवती सुंदर परिधानों में नाचती-गाती, आनन्द और उल्लास का जीवन जीती हैं।









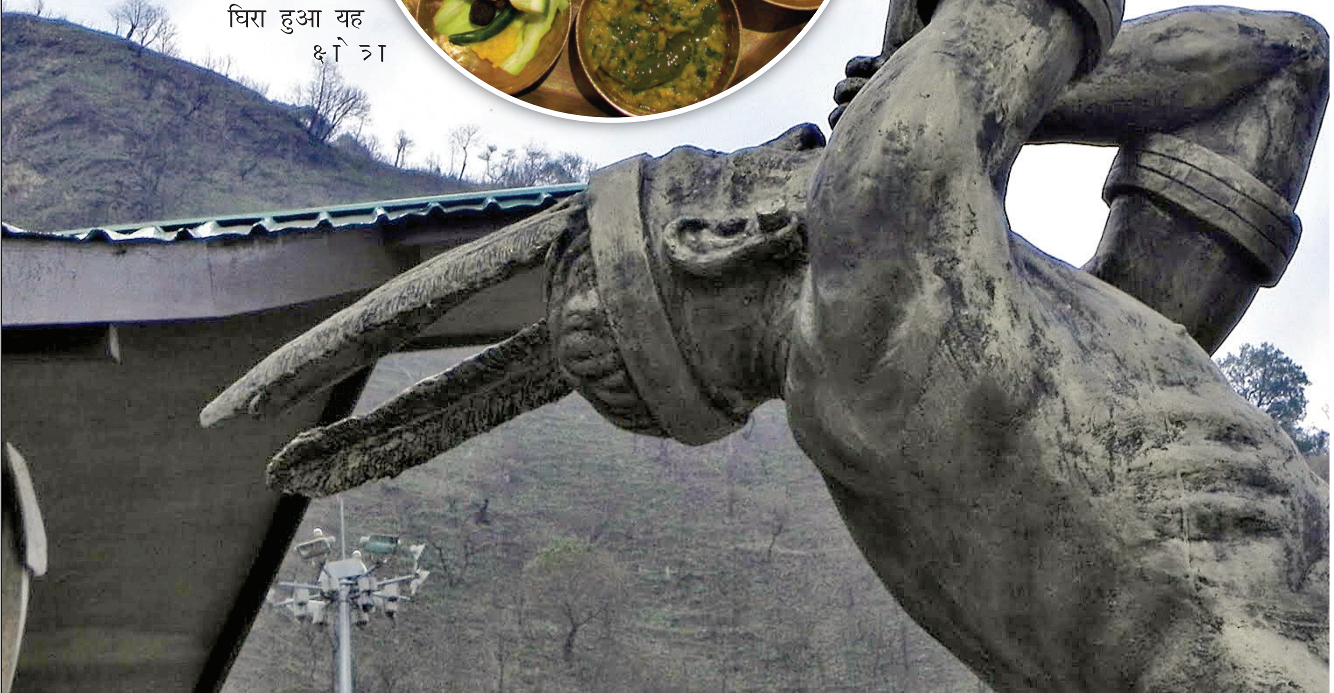
के इम्फाल में श्रीगोविन्द मन्दिर, त्रिपुरा में माता त्रिपुरसुन्दरी– ये सभी स्थान पुराण, इतिहास एवं धार्मिक साहित्य के उल्लेखों की पुष्टि करते हैं।

हिमालय शिखर से निकलकर विशाल रूप धारण करते हुए ब्रह्मपुत्र नद असम को सीधे दो भागों में चीरते हुए बहता है और अंत में गंगा में विलय होकर सागर की ओर रुख करता है।

असम की चाय विश्वप्रसिद्ध है। आजकल इंग्लैण्ड और स्पेन में असम का अदरक निर्यात किया जा रहा है। विश्वभर में अग्रणी किस्म की हल्दी, जिसमें 'करकुमिन' की मात्रा सर्वाधिक पाई जाती है, मेघालय में उगाई जाती है। असम में तेल और प्राकृतिक गैस के भण्डार हैं। अंतरराष्ट्रीय सीमाओं से घिरा हुआ यह क्षेत्र अत्यंत सामरिक महत्त्व का होने के कारण यहाँ कदम-कदम पर सेना तैनात है। ब्रह्मपुत्र यहाँ का जीव नद है। यहाँ की संस्कृति की धारा है। यहाँ की सभ्यता का आधार है। ब्रह्मपुत्र नदी के दोनों तरफ बड़े-बड़े नगर बसे हैं। गुवाहटी, नौगाँव, जोरहाट, डिब्रूगढ़ और तिनसुकिया एक तरफ है तो दूसरी तरफ तेजपुर, उत्तर लखिमपुर, धेमाजी आदि।



असम की राजधानी गुवाहाटी उत्तर-पूर्व क्षेत्र का 'प्रवेश-द्वार' है। अरुणाचलप्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय और त्रिपुरा– सभी राज्य सड़क-मार्ग से गुवाहाटी से जुड़े हुए हैं। इन सभी प्रदेशों के लिए गुवाहाटी से हवाई सेवा भी उपलब्ध हैं। अनगिनत बसें हर दिन सायंकाल गुवाहटी रेल-वे-स्टेशन से सवारियों को लेकर इटानगर, तिनसुकिया, इम्फाल, अगरतला,





आइजाल-जैसे सुदूर गंतव्यों की ओर निकलती हैं। रेल-सुविधा की उपलब्धता न होने के कारण असंख्य लोग इन बसों से अपने-अपने गाँव पहुँचते हैं। यह हमारी कल्पना से बाहर की बात है कि गुवाहटी से सड़क-मार्ग से अपने घर पहुँचने के लिए अरुणाचलप्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा के लोगों को 3-4 दिन का समय लग जाता है। सोचिए मार्ग कितना दुर्गम होगा और यात्रा कितना महंगी और कष्टमय होगी!

असम में ताईमूल के 'अहोम' राजाओं का शासन रहा। अहोम-राजाओं की राजधानी शिवसागर थी। त्रिपुरा में त्रिपुरी देववर्मन का शासन आज़ादी तक रहा। जब देश के अन्य भागों में भारतीय गणतंत्र में राज्यों का विलय हुआ, तब त्रिपुरा और मणिपुर का भी विलय हुआ। मणिपुर में भी स्वतंत्र राजाओं ने राज्य किया। असम, त्रिपुरा और मणिपुर को छोड़कर उत्तर-पूर्वांचल के शेष भागों में स्थानीय जनजातीय शासन-व्यवस्था रही जो एक आदर्श ग्राम स्वराज सरीखा उत्तम और सुगम थी। 'गाँव बूढ़ा' गाँव का प्रमुख एवं सर्वाधिकारी था। इन प्रदेशों के कई ज़िलों में 'पारंपरिक नियम' आज भी सुरक्षित हैं। भारतीय संविधान की छठी अनुसूची के अंतर्गत इन्हें मान्यता और सर्वाधिकार दिए गए हैं। हममें से बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि अरुणाचलप्रदेश, नागालैण्ड और मिजोरम में इनर लाइन पर्मिट लेकर प्रवेश कर सकते हैं।

प्राचीन भारतीय समाज में जो बातें आदर्श मानी जाती रहीं और जिन्हें श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों के रूप में स्वीकारा है, वे आज भी पूर्वांचल में विद्यमान हैं। अनाथ आश्रम और वृद्धाश्रम की कल्पना अभी भी बहुत दूर है-पूर्वोत्तर भारत में। धर्म-संस्कृति-परंपरा के प्रति श्रद्धा, बड़े-बुजुर्गों के प्रति आदर-सम्मान, पारंपरिक पर्व-त्योहारों का पालन, प्रकृति में परमेश्वर का दर्शन करना– ये सारी बातें इस क्षेत्र में पाई जाती हैं।



पूर्वांचल के लोग सरल और सहज स्वभाव के होते हैं। रोटी, कपड़ा और मकान के लिए जी तोड़ परिश्रम करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। उनकी आवश्यकताएँ प्रकृति से पूरी हो जाती हैं। संतुष्ट जीवन व्यतीत करते हैं। क्षेत्र में उद्योग और व्यापार का विकास नहीं हुआ। देश के अन्य प्रांतों से जो लोग गए, उन्होंने व्यापार का बड़ा तंत्र खड़ा किया। अधिकतर सामान अन्य भागों में तैयार होकर जाता है। औद्योगिक विकास के लिए केन्द्र व राज्य सरकारें अनेक योजनाएँ बना रही हैं, लेकिन अनेक बाधाओं के कारण संतोषजनक सफलता नहीं मिल रही है। पढ़े-लिखे तरुण रोज़गार की तलाश में अन्य राज्यों की ओर पलायन करते हैं।

असम की ब्रह्मपुत्र-उपत्यका, बाराक-उपत्यका, मणिपुर की इम्फाल-उपत्यका और त्रिपुरा के अगरतला के आसपास के क्षेत्र को छोड़कर शेष उत्तर-पूर्वांचल पर्वतीय है और जनजातीय लोगों का आवास-स्थान है। बोड़ो, दिमासा, कारबी, राभा, तीवा आदि असम की जनजातियाँ हैं। अरुणाचलप्रदेश में आदि, न्यिशी, आपातानी, गालोंग, मिश्मी, नोक्टे, वांग्छू, मोनपा, शेर्डुकपेन आदि 26 जनजातियों के लोग रहते हैं जिनकी 120 से अधिक उपजातियाँ हैं। नागालैण्ड में अंगामी, आओ, सेमा, लोथा, जेमे, लियांगमेई, कोन्याक आदि 17 प्रकार की जनजातियाँ हैं। मणिपुर की भूमि दो भागों में कटौरा-जैसी है। बीच में घाटी और चारों ओर पहाड़ों से घिरी हुई है। घाटी में मुख्य रूप में मैतेई लोग रहते हैं जो ग़ैर जनजाति के हैं। तांसुल, रोंगमेई, मरिंग आदि 17 नागा जाति और गांगते, पाइते, राल्ते आदि 12 कुकी-समुदाय के लोग वास करते हैं। मेघालच में खासी, जयंतिया और गारो प्रमुख जनजातियाँ हैं। हाजोंग जनजाति के लोग मेघालय में रहते हैं। त्रिपुरा में देववर्मन जमातिया, रियांग, कोलोई, मोलसोम आदि प्रमुख जनजातियाँ रहती हैं।

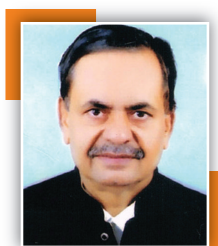
मिजोरम में मुख्य रूप से मिजो और चाकमा रहते हैं। चाकमा-जनजाति के लोग मिजोरम, त्रिपुरा, असम, अरुणाचलप्रदेश के साथ-साथ म्यांमार और बांग्लादेश के चिट्टगोंग पर्वत-क्षेत्र में भी रहते हैं। सिक्किम में लेप्चा और त्रुटिया प्रमुख जनजातियाँ हैं। छत्तीसगढ़, झारखण्ड आदि राज्यों से आकर चाय-बागानों में काम करनेवाले लाखों लोग असम में रहते हैं। हरियाणा और राजस्थान के व्यापारी भी पूरे क्षेत्र में दूर-दूर फैले हुए हैं, कई पीढ़ियों से यहाँ रहने के कारण यहाँ रच-बस गए हैं।

बहुरंगी अति रमणीय प्रकृति की गोद में पलनेवाले उत्तर-पूर्वांचलवासी सालभर पर्व-त्योहार मनाते हुए मस्ती में रहते हैं। सभी स्त्री-पुरुष, युवक-युवती सुंदर परिधानों में नाचती-गाती, आनन्द और उल्लास का जीवन जीती हैं। इसे 'इन्द्रधनुष' कहें या 'मोजाइक' या रंग-बिरंगे फूलों का चमन। लगता है कि धरती पर मानो स्वर्ग का अवतरण हुआ हो।

उत्तर-पूर्वांचल : जैसा मैंने देखा



'सेवन सिस्टर्स' के नाम से विख्यात देश के उत्तर-पूर्वी भाग के सात राज्यों के नाम भी हम भारतवासियों को ठीक से याद न होना विडम्बना ही है। इन राज्यों की भौगोलिक स्थिति के बारे में वहाँ जाए बिना ठीक से कल्पना नहीं की जा सकती। इन राज्यों की सीमाएँ भूटान, बांग्लादेश, चीन और सिक्किम, म्यांमार तथा पश्चिम बंगाल से मिलती है।



■ डॉ. युधिष्ठिर त्रिवेदी
एम.बी.बी.एस., एम.डी., बाँसवाड़ा

'सेवन सिस्टर्स' के नाम से विख्यात देश के उत्तर-पूर्वी भाग के सात राज्यों के नाम भी हम भारतवासियों को ठीक से याद न होना विडम्बना ही है। इन राज्यों की भौगोलिक स्थिति के बारे में वहाँ जाए बिना ठीक से कल्पना नहीं की जा सकती। इन राज्यों की सीमाएँ भूटान, बांग्लादेश, चीन और सिक्किम, म्यांमार तथा पश्चिम बंगाल से मिलती है। प्रदेश पहाड़ी तथा दुर्गम होने से पिछड़ा हुआ है। हर प्रांत में अलग-अलग जनजातियों का बाहुल्य है। सभी जनजातियों के पहनावे, रीति-रिवाज, खानपान में नितांत भिन्नता है। हाँ, एक बात ज़रूर सामान्य है। देश की मुख्य भूमि से दूरी, दूरस्थ व दुर्गम क्षेत्र होने के कारण सम्पर्क का अभाव और विकास-कार्यों के समुचित विस्तार न होने के कारण ईसाइयत का बहुत ज्यादा प्रभाव, असम को छोड़कर शेष राज्यों में 50 प्रतिशत तथा कुछ जनजातियों में इससे से भी अधिक लोगों का धर्मांतरण किया जा चुका है। सड़क, बिजली, पानी जैसी आधारभूत संरचना एवं शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार के बहुत कमजोर हालात हैं। ऊपर-ऊपर से शहरी क्षेत्रों में सब ठीक दिखता है, पर ग्रामीण क्षेत्रों में जाने और गहराई से देखने पर स्थिति अनुमान से भी ज्यादा खराब है।

इतनी खराब स्थिति होने के बावजूद पूरे देश का ध्यान इस समस्या की ओर न के बराबर है। आर्यसमाज, वनवासी कल्याण परिषद्, विवेकानन्द केन्द्र, नवटर भाई ठक्कर- जैसे गाँधीवादी, डी.ए.वी. विद्यालय समिति, दयानन्द सेवाश्रम संघ तथा विश्व हिंदू परिषद् के अनेक पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं को अनेक बार अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है। चर्च द्वारा पिछली एक शताब्दियों से भी अधिक सालों से शिक्षा, स्वास्थ्य की सुविधा देने के बदले जनजातियों से उनके पूर्वजों का धर्म-परिवर्तन करने का कुचक्र अभी भी चल रहा है। विकास की मूलभूत सुविधाओं का अभाव इन्हें तेज गति से भारत से दूर कर रहा है अलगाववादियों और आतंकवादियों के प्रभाव को बढ़ाने में यह स्थिति खाद का काम कर रही है।

गुवाहाटी में कामाख्या शक्तिपीठ और कुछ अन्य तीर्थस्थानों को देखने के बाद मैं पूर्व-परिचित नागालैण्ड दयानन्द सेवाश्रम संघ के कार्यकर्ता डॉक्टर शिरोमणि शास्त्री के निमंत्रण पर गुवाहाटी से रेल द्वारा दीमापुर पहुँचा। दीमापुर नागालैण्ड-असम की सीमा पर नागालैण्ड का सबसे बड़ा व्यवसाई-केंद्र है। राजमार्ग पर ही डी.ए.वी. विद्यालय दीमापुर है। छोटा-सा विद्यालय, दो कमरों का छात्रावास यज्ञशाला, भोजनशाला तथा कार्यकर्ता-आवास हैं। भोजन व विश्राम के पश्चात् हम नागालैण्ड के ग्रामीण क्षेत्र में निकले, धनसरी नदी के किनारे चारों और हरियाली। एक आश्रम में 10 बालक, एक शास्त्री गुरुकुल ब्रह्मचारी मिले। गुरुकुल काँगड़ी की चाय से स्वागत हुआ। एम.डी.एच. के महाशय धर्मपाल गुलाटी के सहयोग से यहाँ एक विशाल आवासीय विद्यालय का निर्माण हो रहा है। बच्चों ने गायत्री मंत्र, प्रार्थना मंत्र सुनाये। **'वन्देमातरम्'** और **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** का उद्घोष सबने किया।



वहाँ से गंगा उपलेसा के मकान पर गये। गंगा उपलेसा ने दो बीघा ज़मीन विद्यालय-निर्माण हेतु दान दी। उसके घर में यज्ञ-कुण्ड बना हुआ था। यह दिमासा जाति का है जो स्वयं को भीम और हिडिंबा का वंशज मानते हैं। गंगा पहले दिमासा के विद्रोही संगठन का कमाण्डर था। इस ज़मीन में पहले सेना से मुकाबला करने हेतु बंकर बने हुए थे। अब उन्होंने भारतीय सेना के सामने आत्मसमर्पण कर दिया है। यह सेना का सहयोग करते हैं। इनके घर पानी पिया। उन्होंने अपने हाथ से बना हुआ अंगवस्त्र ओढ़ाकर स्वागत किया। यहाँ से खटखटी जाना था। खटखटी में भारत विकास परिषद् के आर्थिक सहयोग से वनवासी कल्याण आश्रम एक केन्द्र चलाता है। दीमापुर में भी अंधेरे में राष्ट्रीय राजमार्ग 39 पर नागाओं के डर से घूमना असुरक्षित था। दुकानें बाज़ार 6:00 बजे ही बंद हो गए थे। दीमापुर से शिरोमणि जी हमें वापस असम की सीमा में कार्बी आंगलॉन्ग ज़िले में बोकाजान ले गये। यहाँ विगत 45 वर्ष से दयानन्द सेवाश्रम संघ का आश्रम चल रहा है। लड़के-लड़कियों का छात्रावास, दसवीं तक विद्यालय, कार्यालय, अतिथि-गृह, वार्डन, सचिव-आवास बने हुए हैं। यज्ञशाला भी है। यह सब देखकर थोड़ी प्रसन्नता हुई। विपरीत परिस्थितियों में कार्य करनेवाले इन कार्यकर्ताओं के प्रयास से ही इस क्षेत्र में थोड़ा-बहुत हिंदू-धर्म और हिंदुस्थान से नाता बचा हुआ है।

दीमापुर के आश्रम में बच्चे दिवाली मना सकें, इसलिए मैंने बाँसवाड़ा से कुछ राशि श्री शिरोमणि शास्त्री जी को भेजी। उन्होंने बच्चों को खीर-पूड़ी खिलाई और पटाखे छोड़े, फिर बच्चों से कहा कि यह अपने यहाँ जो डॉक्टर साहब आए थे, उन्होंने दिवाली के लिए आपको शुभकामनाएँ भेजी है। बच्चों ने पूछा दिवाली क्या होती है? शास्त्री जी ने बताया दिवाली हिन्दुओं का फेस्टिवल है।

बोकाजान में भोजन और विश्राम के बाद रात्रि 3 बजे काजीरंगा नेशनल पार्क के लिए निकले। रास्ते में एक और आश्रम था, पर देख नहीं पाये। पेट्रोल सवेरे रास्ते में भरवा लेंगे, ऐसा विचार कर रात में नहीं भरवाया था। पर सवेरे 6:00 बजे के पहले किसी ने पेट्रोल पंप नहीं खोला। अंधेरे में कोई पेट्रोल पंप नहीं खुलता है। पेट्रोल बिना एक घंटे पड़े रहे। काजीरंगा में गैंडे, हाथी देखे और शेर के पंजों के निशान देखे। बहुत ढूँढ़ने पर हिंदी-अख़बार पूर्वांचल समाचार और सेंटिनल मिल जाता है। अंग्रेज़ी का चार रुपए में तथा हिंदी का 6 रुपए में मिलता है। हिंदी अख़बार साठ रुपए में भी मिले, तो भी महंगा नहीं है। काजीरंगा से तेजपुर या सोनितपुर गए। रास्ते में भाई संतोष ने बांग्लादेशी घुसपैठियों की बस्ती बतायी। ब्रह्मपुत्र पर 3.2 किलोमीटर लंबा पुल पार किया।

तेजपुर अच्छा दर्शनीय स्थल है। बाणासुर राक्षस, उसकी पुत्री उषा तथा अनिरुद्ध की प्रेमगाथा तथा भगवान् शंकर और भगवान् कृष्ण के रक्तरंजित युद्ध का साक्षी यह शहर दर्शनीय है। यहाँ से तवांग जाना था पर जाना न हो सका। वापस गुवाहाटी आकर शिलांग-यात्रा शुरू की। शिलांग में प्रवेश से थोड़ा पहले ही जलविद्युत परियोजना का बांध व पावर हाउस दिखता है। इसे बड़ा पानी कहते हैं। सारे मेघालय में इससे पर्याप्त बिजली मिलती है। कहीं पावर कट नहीं है। शहर में प्रवेश-पूर्व ही मांस के लोथड़े लटके हुए दिखे। चार दुकान बाद एक कटी हुई गाय पड़ी थी। ग्राहक की मांग के अनुसार उसका अंगविशेष ग्राहक को काटकर बेचा जा रहा था। ड्राइवर ने बताया कि यहाँ खासी जनजाति मुख्य है। जबतक ये हिंदू थे, तब गाय नहीं खाते थे। पर अब बड़ी संख्या में ईसाई बन गए हैं। शिलांग सुंदर शहर है। सेंटर प्वॉइंट पुलिस बाज़ार में रौनक व भीड़-भाड़ है। रात को भी पुरुष और महिलाओं की अच्छी चहल-पहल, चमकते बाज़ार, बीकानेर मिष्ठान भण्डार में मिठाइयाँ, समोसा, कॉफी, गुलाबजामुन, जलेबी– सब मिलती है। राजस्थानी तथा बंगाली बड़ी संख्या में हैं।

देश की मुख्य भूमि से दूरी, दूरस्थ व दुर्गम क्षेत्र होने के कारण सम्पर्क का अभाव और विकास-कार्यों के समुचित विस्तार न होने के कारण ईसाइयत का बहुत ज्यादा प्रभाव, असम को छोड़कर शेष राज्यों में 50 प्रतिशत तथा कुछ जनजातियों में इससे से भी अधिक लोगों का धर्मांतरण किया जा चुका है।

शिलांग से चेरापूँजी भी गये। यहाँ पहले सेंटीमीटर में नहीं, इंच तथा फिट में वर्षा नापते थे। पर अब झरने सूख गए हैं, पीने के पानी का भी अभाव है। यहाँ रामकृष्ण मिशन का बहुत पुराना विद्यालय है। अंग्रेज़ी सिस्टम से ही चलाना पड़ता है। कोई भी हिंदू-संस्कार देना संभव नहीं। इस विद्यालय में पूर्वांचल की संस्कृति का दिग्दर्शन कराता बहुत सुंदर संग्रहालय है जो अवश्य देखना चाहिए। रास्ते में लौटते समय मुख्य मार्ग से 23 किलोमीटर दूर मौसिनराम म्स्वयंभू महादेव हैं। जंगल में पहाड़ की तलहटी में प्राकृतिक गुफा में एक चट्टान से सतत जलाभिषेक प्रकृति कर रही है।

दिव्य वनौषधियों का भण्डार



■ चंद्रहाङ् सुब्बा
बी.टेक., कालाअंब, हिमाचल प्रदेश

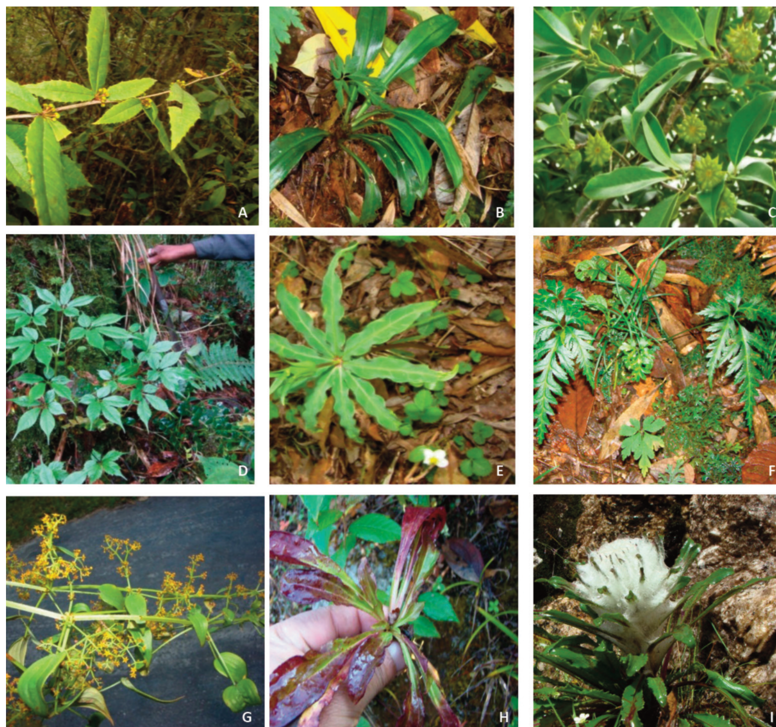
रामायण, महाभारत आदि अनेक ग्रंथों में जड़ी-बूटियों के प्रयोग से मृत अवस्था में पहुँचे व्यक्ति को जीवित करने के अनेक प्रसंग मिलते हैं। लक्ष्मण जब लंका में मूर्च्छित हो जाते हैं, तब हनुमान संजीवनी ले आते हैं। अर्थात् अपने देश के वन-पर्वतों पर कई ऐसी जड़ी-बूटियाँ हैं जो रोगनाशक ही नहीं बल्कि जीवनदायिनी भी हैं। वनवासी अपनी सभी बीमारियों का इलाज़ इन्हीं वनौषधियों से करते आए। पूर्वोत्तर भारत हिमालय से लेकर गंगासागर (बंगाल की खाड़ी) तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में पाए जानेवाले पेड़-पौधों के फूल, पत्तियाँ, जड़ें, छाल– सभी ओषधि के रूप में प्रयोग किए जाते हैं और अनेक असाध्य रोगों का उपचार आसानी से हो जाता है। कहा जाता है– **'नास्ति मूलमनौषधम्'** अर्थात्, ऐसी कोई मूल (जड़) नहीं है जो ओषधि नहीं है यानी सभी जड़ें दवाई के रूप में काम आती हैं। जटिल से जटिल और पुराने रोगों का उपचार में रामबाण-जैसी काम करनेवाली दिव्य वनौषधियाँ उत्तर-पूर्वांचल में पाई जाती हैं।

अरुणाचलप्रदेश में मलेरिया उपचार हेतु 38, पेट की बीमारियों को ठीक करने के लिए 26, मधुमेह-निवारण हेतु 7, स्त्री-गर्भाशय व्याधियों के उपशमन के लिए 11 और बच्चों की बीमारियों के लिए 9 प्रकार की जड़ी-बूटियाँ पाई जाती हैं। असम में इन्हीं व्याधियों के उपचार के लिए क्रमशः 7, 8, 4, 4 और 5 प्रकार की वनौषधियाँ हैं। इनकी तुलना में मणिपुर में सर्वाधिक जड़ी-बूटियाँ प्रयोग की जाती हैं– 78, 23 ,64, 1 और 6। मेघालय में 2,8,3,1 और 8; मिजोरम में 10, 6, 2, 0 और 6; नागालैंड में 2, 0, 0, 0 और 0; सिक्किम में 15, 3, 1, 1 और 3 तथा त्रिपुरा में 0, 3, 0, 1 और 0। ये हैं सर्वसाधारण बीमारियों का इलाज़। हजारों सालों से हमारे पूर्वोत्तरवासी प्रकृति द्वारा प्रदत्त जड़ी-बूटियों, फूल, पत्तियों का प्रयोग करके अपने स्वास्थ्य की देखभाल करते आए हैं। जहाँ पैदल जाने में 8-10 दिन लग जाते हैं, ऐसे सुदूर इलाकों में रहनेवाले अरुणाचलप्रदेश, नागालैण्ड, मिजोरम के लोगों के पास न कोई डॉक्टर था न ही कोई नर्स। लेकिन चारों ओर जंगल में उगे पेड़-पौधे और वनौषधियाँ। ही स्थानीय चिकित्सक हैं। लेकिन नयी पीढ़ी को क्या इन चीजों की जानकारी है? इन औषधीय वनस्पति की पहचान है? सरकारें शोध-संस्थानों के माध्यम से इस ओषधिविज्ञान की खोज करने और इसे सुरक्षित रखने का प्रयास कर रही हैं। लेकिन इन प्रदेशों के युवा भी इस दिशा में आगे आकर औषधीय पौधों की खेती करें एवं इसे अपनी आजीविका और अर्थोपार्जन का साधन बनाएँ तो बेहतर होगा।

गत दो दशकों से पूरे विश्व में जैविक ओषधियों (हर्बल मेडिसिन्स) की बढ़ती मांग को देखते हुए वैज्ञानिक पारंपरिक औषधियों की खोज पर विशेष ध्यान दे रहे हैं। भारत में ही नहीं बल्कि विश्वभर में वन-पर्वतवासियों ने सदियों से पेड़-पौधों से दवाइयाँ बनाकर बीमारियों का इलाज़ किया। वैज्ञानिकों के शोध का केन्द्र-बिन्दु इन जनजातीय लोगों द्वारा अपनाए जा रही प्राचीन चिकित्सा-पद्धति रहा है।

विश्व के 12 प्रमुख जैव-विविधतावाले देशों में भारत एक है। विश्व की 10% जैव-संपदा भारत के 16 विभिन्न जलवायुवाले कृषि-क्षेत्रों में पाई जाती है। देश में पाए जानेवाले 17,000 प्रजातियों के पेड़-पौधों में 7,500 औषधीय गुणों से युक्त हैं। आयुर्वेदशास्त्र में 2,000 ऐसे पौधों का उल्लेख है जिनसे दवाइयाँ बनाई जाती हैं। वैदिककालीन सभ्यता से ही इसका विस्तृत प्रयोग होता आया है। पूर्वोत्तर भारत में अभी भी जड़ी-बूटियों के द्वारा ही इलाज़ चल रहा है। विश्व स्वास्थ्य

पूर्वोत्तर भारत हिमालय से लेकर गंगासागर (बंगाल की खाड़ी) तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में पाए जानेवाले पेड़-पौधों के फूल, पत्तियाँ, जड़ें, छाल— सभी ओषधि के रूप में प्रयोग किए जाते हैं और अनेक असाध्य रोगों का उपचार आसानी से हो जाता है। कहा जाता है— **'नास्ति मूलमनौषधम्'** अर्थात्, ऐसी कोई मूल (जड़) नहीं है जो ओषधि नहीं है यानी सभी जड़ें दवाई के रूप में काम आती हैं। जटिल से जटिल और पुराने रोगों का उपचार में रामबाण-जैसी काम करनेवाली दिव्य वनौषधियाँ उत्तर-पूर्वांचल में पाई जाती हैं।



संगठन के अनुसार 20,000 पेड़-पौधों में औषधीय गुण हैं। आश्चर्य की बात है कि विकासशील देशों में रहनेवाले 80% लोग इन्हीं वनौषधियों पर निर्भर हैं। 90% औषधीय पौधे पहाड़ों पर और शेष 10% मैदानों में पाए जाते हैं।

पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न राज्यों में वन-भूमि के अनुपात को देखकर यह अंदाज़ा लगा सकते हैं कि वनौषधियों का कितना भण्डार हो सकता है। अरुणाचलप्रदेश 80.43%, असम 35.30%, मणिपुर 77.4%, मेघालय 77.23%, मिजोरम 91.27% नागालैण्ड 81.21%, सिक्किम 82.31% और त्रिपुरा 76.95% वनभूमि है जिसमें पाए जानेवाले पुष्पित पौधों की संख्या भी कल्पनातीत है। अरुणाचलप्रदेश में 5000, असम में 3010, मणिपुर में 2500, मेघालय में 3500, मिजोरम में 2200, नागालैण्ड में 2250, सिक्किम में 4500 और त्रिपुरा में 1600 प्रजातियों के पुष्पित पौधे पाए जाते हैं। 'नॉर्थ ईस्ट इण्डिया : एन एथिक स्टोर हाउस ऑफ अनएक्सप्लोरड़ मेडिसिनल प्लान्ट्स' के अनुसार 60 शोधकर्ताओं ने पूर्वोत्तर के सभी राज्यों के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में पाए जानेवाले वनौषधियों पर अपने शोध-पत्र तैयार किए जो अत्यन्त ज्ञानवर्धक है।

ईशान्य भारत के आठ राज्यों में पाई जानेवाली वनौषधियों के नाम और वे किन-किन बीमारियों के इलाज़ में काम आते हैं, इसकी विस्तृत जानकारी निम्नानुसार है। पौधों के नाम स्थानीय बोली-भाषा के अनुसार दिए जा रहे हैं।

अरुणाचलप्रदेश में मलेरिया के निवारण के लिए मिश्मी तीता, अक्साप, चिराता और ओत्रबेङ प्रयोग में लाए जाते हैं। मनिमूने को लेक्सेटिव के रूप में प्रयोग करते हैं। सांतेरो सर्दी, खाँसी और प्रसव-पीड़ा में काम आता है। मिश्मी तीता और अक्साप पीलिया के इलाज़ में भी उपयोगी है। कोप्पी न्यूमोनिया को ठीक करने में और कोप्पीर गर्भ-निरोधक के रूप में कामयाब है। दाँत दर्द में मरशाङ और टिम्ब्रू या जेब्राङ लाभदायक हैं। पाचन-तंत्र को ठीक करने के लिए भी टिम्ब्रू या जेब्राङ का प्रयोग होता है।

असम में कारड़ोई और बला पीलिया को ठीक करती है। बोच, सिज़ू, तीता बहक, महानियुम खाँसी में उपयोगी हैं। मलेरिया में काम आनेवाला चिरायता भी यहाँ पाया जाता है। सतमूल और पथरचूरा– ये दोनों मूत्र-रोग में बहुत लाभकारी हैं। बाटल हृदयरोग में और गोलांचा बाँझपन में रामबाण-जैसे हैं।

मणिपुर के लोग अपने खान-पान में भी ऐसी बहुत-सी वनस्पतियों का प्रयोग करते हैं जो रोग-निरोधक हैं। 'ओक हिदाक' के खाँसी, छाती में जकड़न और अतिसार व्याधियों का उपशमन होता है। अगर से उल्टी, दस्त और सर्पदंश ठीक होता है। लेतेकु पाचन-संबंधी गड़बड़ियों को ठीक करता है। 'कुथप' फोड़े और फुंसी-निवारक है। खोङ्बम तसेलई मूत्र रोग और सर्पदंश-जैसी भयंकर व्याधियों में लाभकारी है। 'लेइखम' नवजात शिशु-स्नान में उपयोग किया जाता है। याई थम्ना मान्बी सूजन, गांठ, जख़्म और मम्प्स को ठीक करता है। येन्सिल उदर-संबंधी व्याधि में लाभकारी है। खोइजु से केशवर्धक लोशन तैयार किया जाता है। चेचक और चर्म-रोग में भी इसका प्रयोग करते हैं।

मेघालय में मिनामकाची, जिन्जोक, अचक्सन, सर्पगन्धा और बद्रहोई (सभी स्थानीय नाम) वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। मिजोरम में बुआङ्बन पार्बुक, बांलतेहलाईताई, थिंगराई, सियलरियल, राम फुइनम, थक्थिंग, ऐतुर, हृइतेंगतेरे, कॉर्थिकनदेंग, नौबन, काइहा और थिङ् खॉवि लु -किस्म की वनस्पति मिलती है।

नागालैण्ड में नेफाफु, जेम्सु नारो, तेपेतिला, सुङ्सुलासु शिअचिबा तोङ् मेत्सुतोङ्, सुङ् पेन्तु, बाङ्को मेसाङ्तोङ् प्रमुख रूप से पाई जानेवाले औषधीय पौधे हैं।

सिक्किम में बिख, काटबिस, अविजाल, पिरिएंगो, रामगुआ, जटामानसी, पनियावाला, ककटि, कटुका, चिरेता और ढेंग्रेसल्ला नाम के पौधे औषधि के रूप में प्रयोग किए जाते हैं।

त्रिपुरा में बोन अलच, अगर सतमूली, मूली, अबोइयान, चेप्कोआ, होमोला, माइत्तेहेदोरी, जर्बोगोयम, द्रोण और हरितकी जड़ी-बूटियाँ व्याधि-निवारण में काम में लाई जाती हैं।

ये सभी दिव्य औषधीय वनस्पतियाँ छोटी-सी बीमारी से लेकर असाध्य रोगों के उपचार में गुणकारी और सदियों से हमारे वन-पर्वतवासियों द्वारा प्रयोग की जा रही हैं। इस बहुमूल्य वनस्पति ज्ञान को सुरक्षित रखना और अगली पीढ़ियों तक पहुँचाना नितांत आवश्यक है।

असम : विविधता में एकता के दर्शन



■ इदाकलुङ्बे जेलियांग

संगठन सचिव, पश्चिमोत्तर क्षेत्र,
फोकस ऑन नॉर्थ ईस्ट



हम जिसे असम या आसाम कहते हैं, उस प्रदेश को वहाँ के वासी 'अहोम' बोलते हैं। असमिया भाषा में 'स' की जगह 'ह' का उच्चारण होता है। 'समिति' के लिए 'हमिति', संघ के लिए 'हंघ', 'सच' के 'हसा' आदि। 'अ' का उच्चारण 'ओ' में किया जाता है।

तिब्बत में उत्पन्न होकर अरुणाचलप्रदेश की पर्वतों से बहकर असम में प्रवेश करता है ब्रह्मपुत्र। यह डिब्रूगढ़ में विशाल रूप धारण कर असम को लंबाई में दो भागों में चीरता हुआ बांग्लादेश के रास्ते गंगासागर में विलीन हो जाता है। भारी वर्षा और बर्फ के गलने के कारण ब्रह्मपुत्र में हमेशा पानी भरा रहता है। बाढ़ आने पर दोनों किनारे बसे हुए छोटे-छोटे गाँवों में तबाही मच जाती है। देश के विभाजन के बाद पूर्वी पाकिस्तान और नेपाल के बीच 22 किमी चौड़ी गलियारा, जिसे 'चिकेन नेक' कहते हैं, असम का संपर्क-मार्ग बन गया। यह गलियारा सामरिक महत्त्ववाला अति संवेदनशील कड़ी है। इस गलियारे में सिलिगुड़ी या जल्पाईगुड़ी एक प्रमुख रेलवे स्टेशन है। सिलिगुड़ी उत्तर बंगाल में है।

सिलिगुड़ी पार करने के बाद थोड़ी ही दूर पर असम की सीमा प्रारंभ हो जाती है। कोकराझार, धुबड़ी, ग्वालपाड़ा, नलबाड़ी न्यू रंगिया, गवाहटी, बंगाईगाँव, होती हुई ट्रेन अतिम छोर– तिनसुकिया तक जाती है। असम के ऊपर उत्तर और दायीं ओर पूर्व और नीचे दक्षिण की ओर अरुणाचलप्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा राज्य हैं। भूटान और बांग्लादेश भी असम के सीमावर्ती देश हैं।

असम का प्राचीन नाम कामरूप था जिसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर थी। उतार-चढ़ाव यानी भूमि समतल नहीं होने के कारण इसका एक नया नाम 'असम' (जो सम नहीं है) पड़ा। असम का इतिहास लगभग 3000 ई.पू. से शुरू होता है। दानव वंश का महिरङ दानव इस पर शासन करता था। राजा नरक का का पुत्र महापराक्रमी भगदत्त महाभारत-युद्ध में कौरव सेना में शामिल था। सातवीं शताब्दी में वर्मन वंश के कुमार भास्करवर्मन ने असम को पुनः अपने प्राचीन वैभव पर पहुँचाया। भास्करवर्मन राजा हर्षवर्धन का अंतरंग मित्र था। इसी कालखण्ड में चीनी तीर्थयात्री विद्वान् ह्वेनत्सांग भारत की यात्रा पर असम आया और यहाँ की भूमि और लोग व उनकी संस्कृति के बारे में लिखा।

हिमालय की तलहटी में बसा असम नीले पर्वत और लाल नदियोंवाला प्रदेश है। उपजाऊ घाटियाँ, घने जंगल, असंख्य नदियाँ, ऊँची पर्वतश्रेणियाँ और ऊँचे-ऊँचे मैदानी क्षेत्र– यह असम का भूगोल है। पूर्व से पश्चिम तक फैली पहाड़ियों ने असम को दो विशाल घाटियों में विभक्त किया है– ब्रह्मपुत्र घाटी व बाराक घाटी। बाराक घाटी को सूरमा घाटी भी कहते हैं। इन घाटियों के बीच स्थित रंगमा और कारबी पहाड़ घने जंगलों और दुर्लभ वन्य प्राणियों से भरे हुए हैं।

असम की मुख्य भाषा 'असमिया' है। विभिन्न जनजातियों की अपनी-अपनी बोली-भाषाएँ हैं। अंग्रेज़ी, बांग्ला और हिंदी



स्थापना का दिन
1912 (असम प्रांत - ब्रिटिश भारत),
15 अगस्त 1947

क्षेत्रफल 78,438 वर्ग किमी

घनत्व 397 प्रति वर्ग किमी

जनसंख्या (2011) 31,205,576

पुरुषों की जनसंख्या (2011)
15,939,443

महिलाओं की जनसंख्या (2011)
15,266,133

जिले 27

राजधानी दिसपुर

सबसे बड़ा शहर गुवाहाटी

नदियाँ
ब्रह्मपुत्र, मानस, सुबनसिरी, सोनई

वन एवं राष्ट्रीय उद्यान
काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान, मानस राष्ट्रीय उद्यान, राजीव गांधी ओरंग राष्ट्रीय उद्यान

भाषाएँ
असमिया, बोडो, कारबी, बंगाली

आधिकारिक राज्य गान
ओ मोर अपनोर देश

राजकीय पशु
एक सींग वाला गैंडा

राजकीय पक्षी
वाइट विंगड़ वुड डक

साक्षरता दर (2011) 73.18%

1000 पुरुषों पर महिलायें 954

विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र 126

संसदीय निर्वाचन क्षेत्र 14

असमी लोकसंस्कृति का वैशिष्ट्य : बीहू नृत्य या बीहू गीत



■ डॉ. स्वप्ना बोरा

एडहॉक लैक्चरार, दारांग कॉलेज, तेजपुर, असम

असमी लोकसंस्कृति में ग्रामीणों में गीतों के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है। इन गीतों के नाम हैं बीहू-नाम, बीआ-नाम, आई-नाम, नाओखेला गीत, बारामाही गीत, तोकारी गीत, हुकारी नाम, बनगीत, मोनीकोंवर गीत, जोनागभारू गीत आदि। इन सभी गीतों में बीहू गीत अत्यंत लोकप्रिय एवं रोमांचक है। यह बीहू असमी समाज के आकर्षक त्योहारों में गिना जाता है। सामान्यतया बीहू-गीतों की रचना खेती करनेवाले किसानों ने की। किसानों ने इन गीतों के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यक्त किया। इस संदर्भ में लोकसंस्कृति के विशेषज्ञ डॉ. प्रफुल्ल दत्त गोस्वामी का मत है, 'इसमें कोई संदेह नहीं कि बीहू-गीत विश्व की सुंदरतम कविताएँ हैं।'

यद्यपि बीहू की रचना का ठीक काल अज्ञात है, परंतु विद्वानों का अनुमान है कि लगभग 5वीं से आठवीं शताब्दी के मध्य बीहू की रचना हो गई होगी। संभ्रांत परिवारों के आर्यों ने चैत्र-संक्रांति (मास का प्रथम दिन) को 'विषुवन संक्रांति' के रूप में मान्यता दी। उस दिन वे गो-पूजा करते थे। इस त्यौहार की सभी रीतियाँ 'विषुवन' कहलाती हैं।

कुछ विशेषज्ञों का मत है कि 'बीहा' 'विषुवन' का अपभ्रंश है। कुछ विद्वानों के अनुसार बीहू त्यौहार आर्यों के 'विशु पूजा' से संबंधित अनार्य त्यौहार है तो कुछ विद्वानों का मत है कि 'बीहू' असम की एक अन्य जनजाति 'दिमाचा कचारी' की देन है। उनके अनुसार 'दिमाचाओं के इष्टदेव 'ब्राईशिबराई' थे। दिमाचा किसान अपनी पूरी फसल को अपने देव को समर्पित करते थे। यहां 'बाई' का अर्थ है 'प्रार्थना करना' या 'मांगना'। 'शा' का अर्थ है 'शांति एवं समृद्धि'। अतः यह माना जा सकता है कि 'बीहू' 'विशु' से आया होगा। दूसरी ओर 'बाई' का अर्थ है 'मांगना' तथा 'हु' का अर्थ है 'देना'।

प्राचीन काल (3500 ईसा पूर्व) में बीहू त्यौहार एक माह तक मनाया जाता था। आरंभ में यह त्यौहार चीन में मनाया जाता था। वे वसंत के अवसर पर इस त्यौहार को मनाते थे। इस अवसर पर तरुण एवं तरुणियाँ नृत्य एवं गीत के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यक्त करती थीं। इन गीतों से आसाम के सामाजिक जीवन के रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, लोककथाएँ, प्रथाएँ तथा जातीय विविधता का बोध होता है। इन गीतों की भाषा सरल, स्पष्ट एवं आसाम की लोक-संस्कृति की प्रतीक है। ये गीत रूपक, उपमा, अलंकार आदि विशेषताओं से युक्त हैं।



भी बहुत लोग प्रयोग करते हैं। बाढ़ प्रभावित निचले मैदानी क्षेत्र में 19वीं शताब्दी में बांग्लादेश से पलायन करके आए हुए लोग बसे हैं। मैदानों से सटे हुए पहाड़ों पर गारो, खासी और हाजोंग जनजाति के लोग रहते हैं। बोड़ो जनजाति की आबादी भी बहुत बड़ी है जो ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट पर बसी है।

असम की अर्थव्यवस्था कृषि-आधारित है। चाय 150 वर्ष पहले से यहाँ की प्रमुख खेती है। खेतों में चुनी हुई पत्तियों का फैक्ट्रियों में प्रसंस्करण किया जाता है। देश का पहला तेल-शुद्धिकरण संयंत्र यहीं पर स्थापित किया गया। चाय और पेट्रोलियम के बाद तीसरे नंबर पर प्लाईवुड आता है। ऐतिहासिक, सामाजिक एवं भू-राजनैतिक कारणों से असम में उद्योगों का समुचित विकास नहीं हो सका है।

असंख्य समुदायों की प्राचीनतम ऐतिहासिक धरोहर, परंपरा, आस्था, विश्वास– इन सबके समावेश और संगम-स्थली होने के कारण असम रंग-बिरंगी संस्कृतियों, त्योहारों और मेलों की धरती बन गयी है। ऊपर की सब विविधताओं के बावजूद प्रत्येक असमी 'आमि अहोमिया' (मैं असमिया हूँ)– इस एकात्म-भाव से बँधा हुआ है।

मेघालय
यात्रा बादलों के बीच की

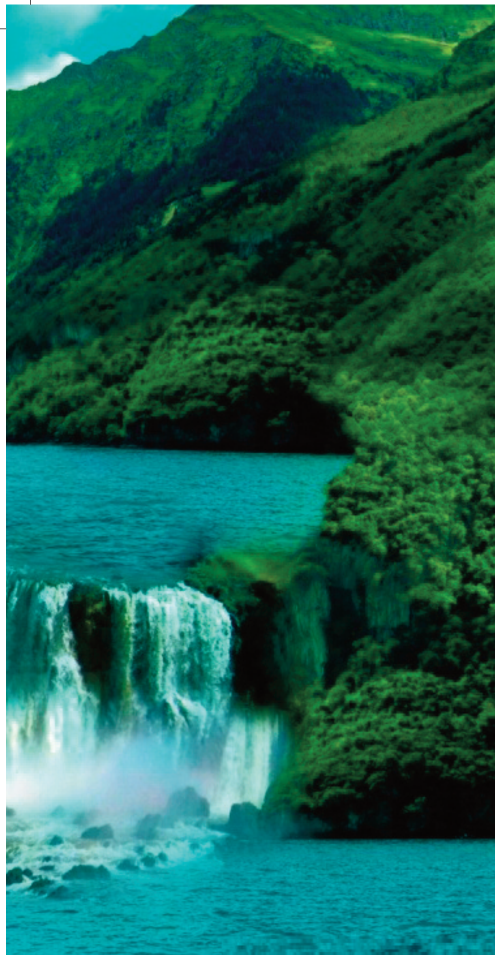


■ बोमगे हे
एलएल.बी., शिलांग, मेघालय

आसमान में काले बादल, नीले बादल, रंगीन बादल, सफेद बादल चित्र-विचित्र आकृतियों को बनाते हुए कभी स्थिर, कभी चलते और कभी दौड़ते हैं– यही है न बादलों की दुनिया! बादलों को छूने की इच्छा बचपन में कई बार हुई होगी। कल्पना कीजिए– आप पहाड़ों की चोटियों के बीच में खड़े हों और बादल आपको छूकर आर-पार चले जा रहे हैं और आपका तन-मन ठण्ढक से आह्लादित हो रहा हो। यह कल्पना साकार होती है– मेघालय की पहाड़ियों पर। शिलांग मेघालय की राजधानी है। गुवाहाटी से साढ़े तीन-चार घंटे लगते हैं– शिलांग पहुचने के लिए कैब और बस से जाया जा सकता है। ब्रिटिश काल में (पूर्वोत्तर भारत) की राजधानी शिलांग रही। ठंढी जगह होने के कारण अंग्रेज़ों ने वहाँ अपना केन्द्र बनाया। इस वजह से यहाँ काफी तरक्की हुई है। शिलांग के अलावा चेरापूंजी एक स्थान है जो विश्व में अत्यधिक वर्षा होने के कारण प्रसिद्ध है। पूर्वांचल के सभी राज्यों के लोग पढ़ाई के लिए शिलांग जाते रहे हैं।

'मेघालय' नाम भी कितना सुंदर है। पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों के नाम कितने अच्छे लगते हैं– अरुणाचलप्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा और मेघालय, एक अलग पहचान बनाए हुए हैं। राज्य बनने से पहले खासी हिल्स, गारो हिल्स और जयंतिया हिल्स होते थे। यहाँ की प्रमुख जनजातियों के वासस्थान होने के कारण इन पहाड़ों को उनके नाम से जाना जाता है। बहुत समय तक शिलांग पूरे क्षेत्र में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। नॉर्थ ईस्ट हिल यूनिवर्सिटी शिलांग में स्थित है। पूर्वोत्तर में 8वें राज्य सिक्किम के जुड़ने से पहले यह भूभाग 'सेवन सिस्टर्स' कहलाता था– सात राज्य होते थे। मेघालय की राजधानी शिलांग में 'डॉन बास्को' और 'लिटिल फ्लावर्स' स्कूल में सभी राज्यों के बच्चे आकर पढ़ते थे। अब अन्य राज्यों में भी अच्छे-अच्छे विद्यालय खुलने लगे। पूर्वांचल के अन्य राज्यों की तरह मेघालय भी कृषिप्रधान प्रदेश है। 80 प्रतिशत लोग कृषि पर आश्रित हैं। धान की खेती के अलावा फल एवं मसाले अच्छी मात्रा में उगाए जाते हैं। अनानास, संतरे, नींबू, अमरूद, लीची, केले और कटहल बड़ी तादाद में पैदा किए जाते हैं। मेघालय का अनानास बहुत ही स्वादिष्ट होता है। यहाँ आलू भी बहुत होते हैं। हल्दी, अदरक, काली मिर्च, सुपारी, तेजपत्ता, पानपत्ता-जैसी व्यापारिक फसलें यहाँ के लोगों की आमदनी का मुख्य स्रोत हैं। हल्दी में पाए जानेवाले करकुमिन रसायन से अनेक असाध्य व्याधियों का इलाज़ होता है। विश्व में सर्वाधिक करकुमिन की मात्रा मेघालय की हल्दी में है।

विश्व में सर्वाधिक वर्षा मेघालय की चेरापूँजी में होती है– 12000 मि.मी.। झूमखेती यहाँ की कृषि-पद्धति है। जंगल को जलाना, जड़ों को उखाड़कर ज़मीन खोदकर खेती करना, चार-पाँच साल के बाद दूसरी जगह चले जाना– यह झूम खेती कहलाती है। खासी जनजाति की प्राचीन धार्मिक कहानियों के अनुसार देवी-देवताओं द्वारा उन्हें यह आदेश दिया गया



है। मेघालय में छोटी-छोटी बरसाती नदियाँ बहती हैं जिसके कारण अनेक सुंदर दर्शनीय जलप्रपात भी हैं। मध्य और पूर्व पठार में खी, डिगारू उनियम, किनशी, मॉपा, उम्नगोट, मिन्ड्नू नदियाँ हैं। गारो पहाड़ियों से दारिंग, सांडा, बांद्रा, भोगाय, दारेंग, सिमसाङ्, निताय, भूपाय नदियाँ बहती हैं। जैसे भारत के कई राज्यों में वनों को देवी-देवताओं का वासस्थान 'पवित्र वन' माना जाता है, वैसे ही मेघालय में धार्मिक वन हैं। मेघालय के जंगलों में कीटभक्षक पौधे पाए जाते हैं।

देश की आज़ादी से पहले मेघालय में तीन अलग-अलग स्वतंत्र राज्य थे– खासी, जयंतिया और गारो। आज़ादी के बाद खासी गारो हिल्स और जयंतिया हिल्स– ये असम के दो ज़िले थे। 1960 में अलग राज्य के लिए आंदोलन हुआ। 1969 में स्वायत्त राज्य बना। 21 जनवरी 1972 को मेघालय को एक पूर्ण राज्य का दर्ज़ा मिला। मेघालय की 75 प्रतिशत आबादी ईसाई-मतावलम्बी है। 90 % गारो और 80 % खासी ईसाइयत को मानते हैं। 97 % हाजोङ् और 98.53 प्रतिशत कोच हिंदू-धर्मावलंबी हैं। गारो हिल्स के 49,917 लोग अपने सनातन धर्म 'संसारी' को मानते हैं। कुल 11,23,490 खासी आबादी में से 2,02,978 लोग प्राचीन नियामखसी या नियामत्रे-परंपरा में आस्था रखते हैं। मेघालय के त्योहार आमोद-प्रमोदभरित हैं। डेनबेल्सिया, असिरोका, अगलमोका, मियामुआ, रोंग्चुगाला, अहइया और वंगाला यहाँ के परंपरागत त्योहार हैं जिनमें लोग झूमते-नाचते दिखते हैं। दक्षिण मेघालय के मॉसिनराम में मॉजिनबुइन गुफा में एक बड़ा प्राकृतिक स्वयंभू शिवलिंग है जिसे 'हाटकेश्वर' के रूप में लोग पूजते हैं। महाशिवरात्रि के दिन यहाँ मेला लगता है। जयंतिया जनजाति के हजारों शिवभक्त इस पावन मेले में भाग लेते हैं।

बांग्लादेश की सीमा पर स्थित मॉलिन्नोङ् गाँव भारत का सबसे श्रेष्ठ स्वच्छ गाँव है। यहाँ जीवंत जड़सेतु-यानी बरगद के पेड़ की जड़ों ने नदी के ऊपर फैलकर एक झूलेदार पुल का रूप ले लिया है। कहीं-कहीं द्वि-स्तरीय पुल भी दिखते हैं। यह एक आकर्षक पर्यटन-स्थल है जहाँ लोग दूर-दूर से आते हैं।

मेघालय की एक और विशेषता है जो और कहीं नहीं है। यहाँ का समाज मातृसत्तात्मक है। महिलाएँ संपत्ति की वारिस होती हैं। परिवार की सबसे छोटी बेटी परंपरागत संपत्ति की हक़दार होती है। यदि कोई परिवार बिना बेटी का हो तो या तो किसी लड़की को गोद लेते हैं या बहू को उत्तराधिकारिणी बनाया जाता है। विवाह के बाद पुरुष पत्नी के घर जाता है और वहीं रहता है।

यहाँ के जनजातीय समाज की अपना उत्कृष्ट पारंपरिक शासन-व्यवस्था है जो ग्राम, समूह और राज्यस्तरीय है। ग्रामसभा एक विधानसभा के समान गठित है, जिसे 'दरबार श्नोङ्' कहते हैं। ग्राम प्रमुख इसका मुखिया होता है। मुखिया के आदेश सर्वमान्य होते हैं। समूह की एक शासन इकाई है जिसे 'दरबार कुर' कहते हैं। राज्य-स्तर पर 'दरबार हैम' की व्यवस्था है। इसका मुखिया 'सियाम' होता है। सभी प्रकार के कर-निर्धारित करना, वसूल करना और खर्च करने का संपूर्ण अधिकार सियाम के हाथ में होता है।

जो पूर्वांचल की यात्रा पर जाते हैं, वे शिलांग जाते हैं। जाते समय गरम कपड़े और छतरी साथ ले जाना न भूलें। वरना पहाड़ों पर बादलों के बीच बसे इस सुंदर पर्वतीय प्रदेश में आप घूमने का मज़ा नहीं ले सकेंगे। है न बादलों के बीच में खड़े होने का मज़ा!



स्थापना का दिन
21 जनवरी 1972

क्षेत्रफल
22,429 वर्ग किमी.

घनत्व
132 प्रति वर्ग किमी

जनसंख्या (2011)
2,966,889

पुरुषों की जनसंख्या (2011)
1,475,057

महिलाओं की जनसंख्या (2011)
2782:

जिले 11

राजधानी शिलांग

भाषाएँ
खासी, प्रार, गारो, हिन्दी, अंग्रेजी, नेपाली, बंगाली

वन एवं राष्ट्रीय उद्यान
बालपक्रम राष्ट्रीय उद्यान, नोकरेक राष्ट्रीय उद्यान, सीजू पक्षी अभयारण्य

राजकीय पशु
धूमिल तेंदुए

राजकीय पक्षी
पहाड़ी मैना

राजकीय वृक्ष
गमारी

राजकीय फूल
लेडी चप्पल आर्किड

नेट राज्य घरेलू उत्पाद (2011)
50,427

साक्षरता दर (2011)
91.58%

1000 पुरुषों पर महिलायें 986

विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र 60

संसदीय निर्वाचन क्षेत्र 2

मणिपुर
महाभारत से जुड़ा हुआ है इतिहास



■ येड्खोम प्रतिमा देवी
अध्यापिका, काकचिंग, मणीपुर

महाभारत में उल्लेख हैंकि मणिपुर की राजकुमारी का विवाह अर्जुन से हुआ था। उनका एक पुत्र बभ्रुवाहन महापराक्रमी था। मणिपुर को स्थानीय भाषा में 'कांगलैपाक' और 'सनालैबाक' भी बोलते हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया का भारत से संबंध जोड़नेवाला प्रदेश मणिपुर है।

मणिपुर का इतिहास महाभारत के साथ जुड़ा है। महाभारत में उल्लेख है कि मणिपुर की राजकुमारी का विवाह अर्जुन से हुआ था। उनका एक पुत्र बभ्रुवाहन महापराक्रमी था। मणिपुर को स्थानीय भाषा में 'कांगलैपाक' और 'सनालैबाक' भी बोलते हैं। कैलासवासी शिव-पार्वती ने रासलीला करने के उद्देश्य से पृथ्वी पर उपयुक्त स्थान ढूँढ़ा तो चारों ओर पहाड़ों से घिरा और पानी से घिरा कटोरानुमा जलाशय दिखा। शिव ने अपने त्रिशूल से एक ओर पहाड़ को छेदकर सारा पानी निकाल दिया। उस एकान्त स्थान में शिव-पार्वती का रास नृत्य हुआ। उस विन्यास में माँ पार्वती के पैरों के नूपुर और उसके अंदर की मणियाँ चारों ओर बिखर गयीं। तब से उस प्रदेश का नाम मणिपुर पड़ा।

बभ्रुवाहन के बाद उनके वंश के 104 राजाओं के नाम मणिपुर के प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। मणिपुर के उत्तर में नागालैण्ड, दक्षिण में मिजोरम, पश्चिम में असम और पूर्व में म्यांमार है। मणिपुर में मैतेई, नागा, कुकी और पाडल रहते हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया का भारत से संबंध जोड़नेवाला प्रदेश मणिपुर है। 2,500 वर्ष पूर्व से ही मणिपुर का दक्षिण-पूर्व एशिया से आर्थिक संबंध जुड़ा था। लोगों को संस्कृति और धर्म का आदान-प्रदान भी यहाँ से होता था। अभी भी मणिपुर के लोगों का म्यांमार, थाईलैण्ड, कोरिया आदि देशों से आवागमन बहुत अधिक है। वैदिक ग्रंथों में मणिपुर के लोगों को गंधर्व माना गया था जो नृत्य-गान में निपुण थे। मध्यकालीन भोजपत्रों से पता चलता है कि मणिपुर के राजपरिवारों के वैवाहिक संबंध असम, बंगाल, उत्तरप्रदेश और दक्षिण के राजवंशों के साथ होते थे।

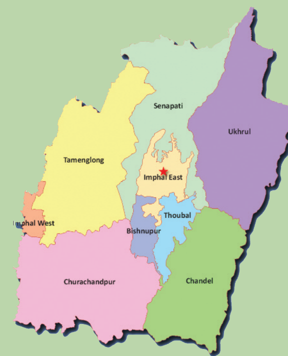


17वीं शती में मणिपुर के राजा मेइदिंगुखगेम्बा के शासनकाल में यहाँ वर्तमान बांग्लादेश से मुसलमान आये। मणिपुर और म्यांमार के बीच अविराम संघर्ष के चलते मणिपुर में सांस्कृतिक-धार्मिक जनसंख्या का असंतुलन तथा सामाजिक-राजनीतिक उथल-पुथल हुआ।

एक रियासत (राज्य) का दर्ज़ा कायम रखते हुए मणिपुर को अंग्रेज़ों ने अपने अधीन ले लिया। स्वतंत्रता के बाद 1949 में मणिपुर के राजा बोधचन्द्र महाराज को शिलांग बुलाकर भारत में विलय-संधि पर हस्ताक्षर करवाया। अक्टूबर 1949 में मणिपुर भारत का अंतर्भाग बन गया। 1956 में यह केन्द्रशासित प्रदेश घोषित किया गया। 1972 में मणिपुर को पूर्ण राज्य का दर्ज़ा प्राप्त हुआ।

आज़ादी से पहले भारत में 500 से अधिक छोटी-बड़ी रियासतें थीं। लेकिन उन सभी का भारतीय गणतंत्र में विलय हो गया। कुछ पूर्ण सहमति से, कुछ की सहमति बनाकर, कुछ को विरोध के बावजूद राष्ट्र की अखण्डता एवं दृढ़ता को दृष्टि में रखते हुए सभी का विलय करा दिया गया। लेकिन मणिपुर के कुछ लोग इसके पक्ष में नहीं थे। उनके दिलों में 'मणिपुर एक स्वतंत्र राष्ट्र है'– ऐसा प्रगाढ़ संकल्प था। ऐसे लोगों ने 1964 में यू.एन.एल.एफ. संगठन बनाया। ये विलीनीकरण का विरोध करते हुए अलग राष्ट्र की मांग करने लगे। पाँच दशक बीत गए। अलगाववादी संगठन के नाम बदलते गए, नेता बदलते गए, लड़ते-लड़ते कुछ लोग इस दुनिया को छोड़कर चले गए। इस सुंदर धरती को लहूलुहान करके छोड़ दिया। इस गंधर्व भूमि को 'किलिंग फील्ड्स' बना दिया। लोग आतंक के साये में जी रहे हैं। पूरा देश और दुनिया विकास की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए आसमान को छू रही है, लेकिन मणिपुर भय और अशान्ति में जी रहा है। नागालैण्ड ने संघर्ष का पथ छोड़ दिया है। मिजोरम ने शान्ति समझौता कर लिया है। लेकिन मणिपुर दहक रहा है। दिन-रात किसी-न-किसी मुद्दे को बहाना बनाकर जनभावनाएँ भड़काई जाती हैं।





स्थापना का दिन
21 जनवरी 1972

क्षेत्रफल
22,327 वर्ग किमी

घनत्व
122 प्रति वर्ग किमी

जनसंख्या (2011)
2,966,889

शहरी जनसंख्या : में (2011)
32.45%

पुरुषों की जनसंख्या (2011)
1,491,832

महिलाओं की जनसंख्या (2011)
1,475,057

जिले 9

राजधानी इम्फाल

नदियाँ
बराक, इम्फाल और इरिल

वन एवं राष्ट्रीय उद्यान
कैबुल राष्ट्रीय उद्यान,
शिरुई राष्ट्रीय उद्यान

भाषाएँ
मणिपुरी, मेइती

राजकीय पशु
संगाई हिरन

राजकीय वृक्ष
भारतीय महोगनी

राजकीय फूल
सिरोय कुमुदिनी (लिली)

नेट राज्य घरेलू उत्पाद (2011)
29,684

साक्षरता दर (2011) 75.48%

1000 पुरुषों पर महिलायें 987

विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र 60

संसदीय निर्वाचन क्षेत्र 2



अनिश्चितकालीन बन्द करवाया जाता है। विदेशी ताकतें इसे भारत से अलग करने में यहाँ के उग्रवादी-अलगाववादी गुटों को प्रेरित कर रही हैं। यदि मुणिपुर की जनता शान्ति का माहौल बनाकर विकास के रास्ते पर चले, तो निश्चित ही यह छोटा-सा प्रदेश विश्व का अग्रणी पर्यटन-स्थल बन सकता है।

मणिपुर की राजधानी इम्फाल का गोविन्द जी मन्दिर, मोइराङ् का आईएनए स्मारक, म्यांमार सीमा स्थित मोरे मार्किट आदि दर्शनीय स्थल हैं। विशाल प्राकृतिक झील लोकंटक में पर्यटन की असीमित संभावनाएँ हैं। वसंतागमन पर याउसङ् (होली) का उल्लास मणिपुर में देखने लायक है। चाँदनी रातों का नृत्य (थावल चोङ्बो) केवल नाचनेवालों का ही नहीं बल्कि इसे देखनेवालों का दिल भी मचल जाता है। हज़ारों युवक-युवतियाँ ड्रम बीट और बांसुरी वादन पर खुले मैदान में नाचते हैं। विवाह, रासलीला, स्वस्ति पूजा, चूड़ाकरण आदि सभी संदर्भों में भाग लेनेवाले चन्दन वर्ण के शुभ्र व सुन्दर परिधानों से सज्जित होकर चंदन का तिलक लगाकर, सज-धजकर कतारों में उत्सव-स्थान पर पहुँचते हैं।

पुरुषों को भी धोती, कुर्ता पहनना अनिवार्य है। चाहे बड़े-से-बड़ा सरकारी अधिकारी हो, वह सूट-बूट में नहीं जा सकता है। ड्रेस कोड का पालन करना ही पड़ेगा। रासलीला, पुङ्चोलम, ढोलचोलन, थांग-ता आदि न जाने कितने प्रकार के नृत्य-गीत मणिपुर में प्रदर्शित होते हैं।

इन नृत्यों की शोभा देखकर आप दंग रह जाएँगे और समय का पता नहीं चलेगा। मणिपुर ऐसा प्रदेश है, जहाँ केवल दो-चार दिन घूमने से पूरा आनन्द नहीं लिया जा सकता। पूर्ण आनंद लेना हो तो 'होम स्टे' करना होगा और यहाँ के समाज और संस्कृति को नज़दीक से देखना होगा।

‘मरुप’ : मणिपुर की अर्थव्यवस्था की रीढ़

मणिपुरी भाषा में ‘मरुप’ का अर्थ दोस्त होता है। एक ‘समूह’ के रूप में भी इसे प्रयोग करते हैं। यहाँ जिस अर्थ में हम ‘मरुप’ शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, वह है ‘बचतगट’, लेकिन दूसरे रूप में। मणिपुर की घाटी में रहनेवाले ‘मैतेई’ समाज के लोगों ने अपनी छोटी-बड़ी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए एक सुंदर और सुलभ व्यवस्था बनाई है– मरुप।



मरुप में साधारणतया महिलाएँ होती हैं। लेकिन पुरुषों के भी मरुप होते हैं। गली-मोहल्ले का भी मरुप होता है। यह कुछ लोगों का एक समूह हैं जो साप्ताहिक या मासिक कुछ राशि जमा करते हैं और ज़रूरत पड़ने पर उसे लेते हैं। ‘कमेटी’ या ‘चिटफंड’ के नाम से अन्य प्रदेशों में चलता है। लेकिन दोनों में अंतर है। निश्चित सदस्य निश्चित समय और निश्चित राशि– ये तीन चीजें ‘मरुप’, ‘कमेटी’ और ‘चिटफंड’ की एक समान बातें होती हैं। लेकिन मरुप की एक विशेषता और है जो अन्य से भिन्न है, वह है निश्चित उद्देश्य। किसी वस्तु या कार्य के लिए ‘मरुप’ का गठन होता है। मणिपुर की हर महिला एक या अनेक मरुप की सदस्या होती है। घर की ज़रूरतों के लिए अक्सर पैसे नहीं होते। ऐसी हालात में पुरुषों से अधिक महिलाओं को दिक्कत आती है। कम आयवाले साधारण परिवारों में यह समस्या और अधिक होती है। बैंक से ऋण लेना भी इतना आसान नहीं होता। किसी महाजन के पास जाने पर घर, ज़मीन या सोना गिरवी रखना पड़ता है। बिना इन संकटों के बड़े-बड़े काम भी आसानी से निपट जाते हैं– ‘मरुप’ के सहारे। घर बनाने के लिए बहुत बड़ी राशि की ज़रूरत होती है। इसके लिए ‘युम सा मरुप’ (गृह-निर्माण बचत गट) गठित किया जाता है। मरुप के सदस्य हर महीने कुछ राशि जमा करते हैं। समूह में से किसी एक के पास राशि जमा की जाती है। प्रत्येक छः महीने में यानी साल में दो बार इसकी बोली या निकासी होती है। यह बहुत लंबे समय का मरुप होता है– 10 साल या इससे भी अधिक विवाह के लिए ‘लुहोङ्बा मरुप’ की व्यवस्था है। इसकी समय-सीमा नहीं है। जब भी किसी सदस्य या सदस्या के परिवार में विवाह संपन्न कराना हो तो उसे ‘मरुप’ से पैसे मिल सकते हैं। युम सा मरुप और लुहोङ्बा मरुप से पैसे लेनेवालों को ब्याज साहित किश्त देनी होगी। तीसरा है ‘लम कोइबा मरुप’ (यात्रा बचतगट)। मणिपुर के लोग नवद्वीप, वृन्दावन आदि तीर्थस्थानों की यात्रा को अपने जीवन का परम सौभाग्य मानते हैं। छोटी आमदनीवाले और किसान सालों-साल इस मरुप में पैसे जमा करते हैं। इसकी समय-सीमा बहुत लंबी होती है। पर्याप्त राशि जमा होने पर समूह के सब लोग यात्रा पर निकलते हैं। बस रिजर्व करके सीधे इम्फाल से हज़ारों किलोमीटर यात्रा करते हैं। साथ में खाद्य-सामग्री, खाना बनानेवाले को भी ले चलते हैं। आपको आश्चर्य होगा कि इनके अलावा कौन-कौन से मरुप है– यह जानकर। सोफा मरुप, डाइनिंग टेबल मरुप, गोद्रेज अल्मीरा मरुप, टीवी मरुप, वाशिंग मशीन मरुप, गैस-कनेक्शन मरुप, फ्रिज मरुप, घर में आवश्यक सभी सामान के लिए महिलाएँ ‘मरुप’ गठित करती हैं। इतना ही नहीं ‘सर्फ मरुप’ और ‘साबुन मरुप’ भी होते हैं। सालभर के लिए आवश्यक डिटर्जेंट पाउडर और साबुन एकसाथ खरीदने के लिए मरुप बनाती हैं इनके अलावा तीन और मरुप हैं– फनेक मरुप, खुदई मरुप और रानी फी मरुप। फनेक मणिपुर की महिलाओं का पहनावा है। शादी के लिए 50 से लेकर 100 फनेक की ज़रूरत होती है। इसके लिए लड़कियाँ किशोरावस्था से ही 10-20 रुपए जमा करती हैं। शादी के समय तक एक बड़ी राशि जमा हो जाती है।

> **किसी वस्तु या कार्य के लिए ‘मरुप’ का गठन होता है। मणिपुर की हर महिला एक या अनेक मरुप की सदस्या होती है।**

पुरुषों का तौलिया या अंगोछा को खुदई बोलते हैं। यह आम तौलिए से बहुत बड़ा होता है। शादी में ‘फनेक’-जैसी ‘खुदई’ भी खरीदना होता है। इसके लिए खुदई मरुप का गठन करते हैं। मणिपुरी महिलाओं का अति महंगा और सुंदर पहनावा है– ‘रानी फी’ (रानी वस्त्र)। इसकी कीमत 10-15 हज़ार या इससे भी अधिक होती है। रानी फी मरुप से ये वस्त्र खरीदने में बहुत लाभ मिलता है।

न जाने मणिपुर में कितने ऐसे मरुप है जिससे सब लोग लाभान्वित होते हैं और सरलता से बड़ी-बड़ी ज़रूरतों को पूर्ण कर लेते हैं। है न मरुप मणिपुर की अर्थव्यवस्था का रीढ़!

आवरण कथा

मणिपुर में हिन्दी के बढ़ते कदम



स्वाधीनता संग्राम के दौरान जब गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदुस्तानी की वक़ालत की और उसके प्रचार-प्रसार की आवश्यकता जतलाई तो विभिन्न प्रदेशों के साथ मणिपुर में भी राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को ही मान्यता देने के पक्ष में अनेक लोग सामने आये।



■ डॉ. ई. विजयलक्ष्मी
~~एडहॉक लैक्चरर, दारांग कॉलेज, तेजपुर, असम~~

भारत-जैसे बहुभाषी देश में राजभाषा, राष्ट्रभाषा तथा सम्पर्क-भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग हो रहा है। हिंदी को ये पद उसकी अपनी विशेषताओं के कारण प्राप्त हुए हैं। किसी भी भाषा को जनभाषा या सम्पर्क-भाषा बनने के लिए सामाजिक आवश्यकता-पूर्ति की क्षमता, रचनात्मक शक्ति और साहित्यिक एवं कलात्मक योग्यता से परिपूर्ण होना चाहिए। हिंदी में ये सारी विशेषताएँ मौजूद हैं। इसलिए हिंदी का प्रयोग न केवल भारत, बल्कि विदेशों में भी बढ़ रहा है। कहना न होगा कि आज तकनीकी विकास के इस दौर में भी हिंदी का प्रचार-प्रसार बड़ी तेजी हो रहा है।

मणिपुर में हिंदी का प्रयोग कब और कैसे शुरू हुआ, इसका निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। इतना अवश्य कहा जाता है कि दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के बीच भारत के प्रमुख हिंदी-प्रदेशों से अनेक ब्राह्मण मुग़लों के आक्रमण से भयभीत होकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में चले गए थे। प्रव्रजन के माध्यम से बहुत से लोग मणिपुर भी पहुँचे, तब मणिपुरवासियों का परिचय हिंदी से हुआ। ये ब्राह्मण अपने साथ अपनी भाषा और अपनी संस्कृति लेकर आए थे, जिनके समन्वय से मणिपुर में एक नयी संस्कृति का जन्म हुआ। ईश्वर की पूजा-आराधना जैसी धार्मिक क्रियाओं में ये ब्राह्मण संस्कृत तथा हिंदी की शब्दावली का प्रयोग करते थे। इस तथ्य की जानकारी भी मिलती है कि पन्द्रहवीं शताब्दी में राजा कियाम्बा द्वारा लमलाङ्दोङ् या विष्णुपुर में स्थापित विष्णु मन्दिर में पूजा-अनुष्ठान करवाने के लिए ब्राह्मण नियुक्त किए गए थे। अठारहवीं शताब्दी में पामहैबा अर्थात् महाराजा गरीबनवाज़ द्वारा अपने शासनकाल में वैष्णव सम्प्रदाय को राजधर्म घोषित कर दिए जाने के बाद तो वैष्णव पदावली तथा जयदेव के गीतगोविन्द के पदों का गान मणिपुरी सामाजिक-सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्रियाओं का अनिवार्य अंग बन गया। वैष्णव मतावलम्बी मणिपुरी लोगों के मन में काशी, हरिद्वार, नवद्वीप, पुरी, वृन्दावन आदि क्षेत्रों के प्रति श्रद्धाभाव जागा। इन तीर्थस्थलों की यात्रा के कारण भी हिंदी तथा यहाँ की बोलियों से मणिपुर के लोगों का परिचय बढ़ा।

अठारहवीं शताब्दी में जब अंग्रेज़ मणिपुर आए, उस समय वे अपने साथ बांग्ला तथा हिंदीभाषी कुछ अधिकारियों को भी साथ लाए थे। उनसे सम्पर्क स्थापित करने के लिए भी मणिपुर के लोगों को हिंदी की आवश्यकता महसूस हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में महाराज चुड़ाचाँद के शासनकाल में औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए विद्यालयों की स्थापना की गई। मेधावी विद्यार्थियों को मणिपुर से बाहर विद्याध्ययन के लिए भेजा गया। काशी, प्रयाग, नवद्वीप-जैसे धार्मिक स्थलों में रहकर उन विद्यार्थियों ने संस्कृत के साथ हिंदी का भी ज्ञान प्राप्त किया। इसके साथ मणिपुर में हिंदी को प्रसारित करने में हिंदीभाषी व्यापारियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान जब गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदुस्तानी की वक़ालत की और उसके प्रचार-प्रसार की आवश्यकता जतलाई तो विभिन्न प्रदेशों के साथ मणिपुर में भी राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को ही मान्यता देने के पक्ष में अनेक लोग सामने आये। पं. राधामोहन शर्मा, थोकचोम मधु सिंह, ललिता माधव शर्मा और कैशाम कुँजबिहारी ऐसे ही व्यक्तित्व हैं, जिनपर गाँधी जी के विचारों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वास्तव में इन्हें मणिपुर में हिंदी प्रचार-प्रसार के आदि-स्तंभ के रूप में माना जाना चाहिये। आज मणिपुर में हिंदी का जो एक समृद्ध रूप देखने को मिलता है, वह सहज परिस्थितियों के कारण उत्पन्न नहीं हुआ है, बल्कि निःस्वार्थ हिंदीसेवियों की आहुतियों का परिणाम है।

हिंदी-प्रचार के प्रारंभिक समय में पं. राधामोहन शर्मा ने थोकचोम मधु सिंह के साथ मिलकर 'हिंदी विद्यालय' स्थापित दिया और हिंदी का अध्यापन-कार्य आरंभ किया। कैशाम कुँजबिहारी ने मोइराङ्खोम और तेरा बाज़ार में हिंदी स्कूल की शुरूआत की।



आगे चलकर इन्होंने ही 'राष्ट्रलिपि स्कूल' की भी स्थापना की। सन् 1933 में इम्फाल के व्यापारी वर्ग के प्रयासों से सेठ भैरोदान के नाम पर 'भैरोदान हिंदी स्कूल' की स्थापना हुई। इनके अलावा हिंदी प्रचार और प्रसार को गति देनेवाले महानुभवों में हुइरोम अतुलचन्द्र सिंह, लाइपुबम भागवत देव, अरिबम छत्रध्वज शर्मा, डांहांमै मथियुचुङ (मेरा कबुई), हिदङ्मयुम द्विजमणि देव शर्मा, चिगाङ्बम कलाचाँद शास्त्री आदि उल्लेखनीय हैं।

मणिपुर में संस्थागत हिंदी-प्रचार के संबंध में प्रामाणिक तौर पर इस तथ्य की जानकारी मिलती है कि सन् 1928 में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' द्वारा हिंदी-प्रचार का कार्य शुरू किया गया । अतः माना जा सकता है कि इसी संस्था के माध्यम से मणिपुर में संस्थागत हिंदी-प्रचार की नींव पड़ी। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के अंतर्गत सन् 1940 में 'मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना हुई। सन् 1953 में 'मणिपुर हिंदी परिषद्' एक स्वैच्छिक हिंदी प्रचार संस्था के रूप में अस्तित्व में आयी। इन संस्थाओं के साथ नागरी लिपि प्रचार सभा (1958), नागा हिंदी विद्यापीठ (1970), मणिपुर ट्रायबल्स हिंदी सेवा समिति (1982) आदि ऐसी समय-समय पर स्थापित संस्थाएँ हैं, जिन्होंने मणिपुर में हिंदी-प्रचार को गति की। अखिल मणिपुर हिंदी शिक्षक संघ और मणिपुर हिंदी शिक्षक संघ-जैसी संस्थाएँ भी मणिपुर में हिंदी की स्थिति को मज़बूत करने की कोशिश में लगी हैं। सरकारी योजनाओं के तहत केन्द्रीय हिंदी शिक्षण योजना के अलावा हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थान, हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालय आदि में आयोजित हिंदी-संबंधी कार्यक्रमों के कारण मणिपुर में हिंदी का एक सशक्त रूप उभरकर आता है। मणिपुर विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में होनेवाली स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा, शोध तथा अनुवाद के कार्य मणिपुर में हिंदी की स्थिति को मज़बूत करनेवाले हैं। आकाशवाणी इम्फाल केन्द्र से प्रसारित होनेवाले हिंदी-संबंधी कार्यक्रम हिंदी के प्रति रुचि उत्पन्न करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि ये कार्यक्रम भी मणिपुर में हिंदी प्रचार-प्रसार में सहायक हैं।

मणिपुर में हिंदी-पत्रकारिता ने भी हिंदी प्रचार-प्रसार को गति प्रदान की है। मणिपुर में हिंदी-पत्रकारिता के संबंध में यह तथ्य उपलब्ध है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान एक हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशित हुई थी, परन्तु इसके संपादक के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। सन् पचास के बाद दूसरी पत्रिका साइक्लोस्टाइल में निकाली गई, जिसका नाम 'कामाख्या न्यूज़ एक्सप्रेस' था। इसके बाद मणिपुर में प्रकाशित जिन पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, उनमें उल्लेखनीय हैं– सम्मेलन गज़ट, नई शिक्षा, नागरिक पन्थ, चिन्तना, हिंदी शिक्षक द्वीप, युमशकैश, कुन्दो परेङ्, महिप, चयोल पाउ, लटचम आदि परन्तु इनमें से कुछ धनाभाव या अन्य किसी-न-किसी कारण से अल्पकालिक सिद्ध हुईं। महिप, चयोल पाउ, लटचम और युमशकैश ऐसी पत्रिकाएँ हैं जो वर्तमान में हिंदी-सेवा में जुटे लोगों की प्रतिबद्धता सिद्ध करती हैं।

मणिपुर में हिंदी-पुस्तकों के प्रकाशन के माध्यम से भी हिंदी प्रचार-प्रसार की व्यापकता को समझा जा सकता है। मणिपुर में हिंदी-पुस्तकों के प्रकाशन के इतिहास को देखें तो पता चलता है कि मणिपुर में सन् पचास के आस-पास जो पहली हिंदी पुस्तक प्रकाशित हुई, वह अतोम बाबू शर्मा की धर्म-संबंधी पुस्तक थी। इसके पश्चात् आज तक अनेक पाठ्य-पुस्तकों तथा मौलिक रचनाओं का प्रकाशन हो चुका है। क्षितिज-सा ध्येय (आचार्य राधागोविंद कविराज), मीतै चनु (सं. देवराज), राष्ट्रीय चेतना चिंतन (ह. गोकुलानंद शर्मा), सिद्धेश्वर चालिसा (शिवगोविंद दास), प्रयास (सं. देवराज), खम्ब-थोइबी (निशान सिंह), वीर टिकेन्द्रजीत (के याइमा शर्मा) आदि कुछ पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। इन पुस्तकों के अलावा आज तक अनेक पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं। हिंदी से मणिपुरी तथा मणिपुरी से हिंदी में अनूदित सामग्रियाँ भी मणिपुर में हिंदी प्रचार-प्रसार को बढ़ावा दे रही हैं।

> **हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए अब तक व्यक्तिगत तथा संगठनात्मक स्तर पर जितने भी प्रयास हुए है, वे सराहनीय है। उनके प्रयासों को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता, किन्तु यह भी सत्य है कि आज मणिपुर में हिंदी का अपेक्षित विकास नहीं हो रहा।**

इतना होने के बावजूद यह कहना गलत न होगा कि अहिंदी प्रदेश होने के नाते मणिपुर में हिंदी को वह स्थान नहीं मिल पाया है, जिसकी वह अधिकारिणी है। मणिपुर में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए अब तक व्यक्तिगत तथा संगठनात्मक स्तर पर जितने भी प्रयास हुए है, वे सराहनीय है। उनके प्रयासों को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता, किन्तु यह भी सत्य है कि आज मणिपुर में हिंदी का अपेक्षित विकास नहीं हो रहा।

अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आज हिंदी की स्थिति सुदृढ़ हो रही है। विश्व के प्रमुख देशों– ब्रिटेन, अमेरिका, रूस, जर्मनी, चीन, जापान यहाँ तक कि थाइलैण्ड और कोरिया में भी प्रतिष्ठित और मान्यता प्राप्त हैं। हिंदी के माध्यम से न केवल भारत में बल्कि विश्व की दौड़ में भी शामिल हो सकते है। हिंदी के माध्यम से इंटरनेट की सुविधा का लाभ उठाया जा सकता है। इसी के साथ हमें यह भी समझना होगा कि हिंदी के माध्यम से विश्व के मणिपुरी-भाषा और संस्कृति का परिचय दिया जा सकता है। ऐसी स्थिति में मणिपुर में हिंदी-प्रचारकों तथा संस्थाओं के समक्ष तमाम समस्याओं के होते हुए समझदारी, कौशल और समर्पण-भावना के साथ योजनाबद्ध ढंग से यदि प्रचार-कार्य करें, तो निश्चित रूप से मणिपुर में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है।

मिज़ोरम
विकास की दौड़ में अग्रणी प्रदेश



■ भारत भूषण जैन
सामाजिक कार्यकर्त्ता

मिजो बेम्बू डान्स टीवी चैनलों एवं अन्य सामाजिक उत्सवों में कभी-कभी देखने को मिलता है। पुरुष लोग अपने दोनों हाथों में एक-एक लंबे बांस पकड़कर जमीन पर उकड़ू बैठते हैं और समान समयांतराल में बांसों को जोड़ना और खोलना– यह उनका काम है। जुड़ते-खुलते बांसों के बीच सुंदर कपड़े पहने और स्कार्फ या बांस के मुकुट से सजी हुई युवतियाँ लयबद्ध रीति से अपने पैरों को बचाती हुई कूदती हैं। नृत्य को देखने से ही मज़ा आता है। बिना थके और बिना रुके विभिन्न दिशाओं में विन्यास करती हुई थिरकनेवाली मिजो-युवतियों का नृत्य-कौशल देखकर लोग दंग रह जाते हैं। इसे मिजो भाषा में 'चेरॉव' कहते हैं। लोगों का मानना है कि चेरॉव पहली शती ईसवी में शुरू हुआ। उस समय मिजो लोग चीन के युनान प्रांत में रहते थे। 13वीं शताब्दी में ये लोग चिन हिल्स आकर बसे। धीरे-धीरे भारत की ओर बढ़कर मिजोरम की पहाड़ियों में आए। दक्षिण-पूर्व एशिया में रहनेवाली जनजातियों के लोगों में भी ऐसे नृत्य पाए जाते हैं। इसमें भाग लेनेवाली लड़कियों का पहनावा है पुआनचेई, कॉबर्चेई, वाकिरिया और थिहना। यह चेरॉव नृत्य आजकल सभी सामाजिक संदर्भों में प्रदर्शित किया जा रहा है। अब यह एक मुख्य आकर्षण बन गया है। 'खुल्लम' नृत्य अतिथियों का नृत्य है जो खुआङ्चानि पर दर्शाते हैं। समाज में प्रतिष्ठा और स्वर्ग में स्थान पाने के लिए योग छुआह उपाधि प्राप्त करना आवश्यक है। दो तरीकों से यह उपाधि प्राप्त की जा सकती है। पहला तरीका है– युद्ध में पराक्रम प्रदर्शित करना या शिकार में जंगली सुअर, भेड़िए, काला सांप आदि जानवरों को अधिक संख्या में मारना। दूसरा तरीका है-नृत्य या शारीरिक विन्यासों के प्रदर्शन से। दूसरी पद्धति को खुआङ्चावि बोलते हैं। खुआङ्चावि में दूर-दूर के गाँवों से लोग आते हैं। उनके द्वारा किए जानेवाले नृत्य को खुल्लम कहते हैं। पारंपरिक रंग-बिरंगे वस्त्र 'पुआनदुम' को कंधों पर लेकर लहराते हुए लोग ड्रम बीट पर बड़ी संख्या में नाचते हैं जो बहुत ही आकर्षक होता है।

कई इतिहासकारों का मानना है कि पूर्वोत्तर के अन्य भागों जैसे ही मिजो लोग भी मंगोलियाई समूह के हैं जो चीन से भारत में आकर बसे। हो सकता है कि ये लोग चीन में यालुंग नदी के किनारे शिनलुङ् या लुङ्शान के रहनेवाले हों। 16वीं शताब्दी के मध्य में ये शान प्रांत में आए और वहाँ से कानो घाटी में पहुँचे। भारत में सर्वप्रथम कदम रखनेवाले मिजो को कुकी नाम से जाना जाता है। दूसरा समूह 'नव कुकी' कहलाने लगा। सबसे अंत में लुशाई आये।



18वीं और 19वीं शताब्दी का मिजो-इतिहास आपसी संघर्ष, अस्तित्व और वर्चस्व की लड़ाई का था। अंत में 1895 में मिजो हिल्स ब्रिटिश भारत का हिस्सा बन गया। 1898 में उत्तर और दक्षिण का पर्वतीय क्षेत्र लुशाई हिल्स जिला बना जिसका मुख्यालय ऐजाल था। असम के जनजातीय बहुल इलाकों में ब्रिटिश शासन को मज़बूत करने का काम 1919 में शुरू हो गया। लुशाई हिल्स को 'पिछड़ा क्षेत्र' में शामिल किया गया। 1935 में असम के जनजातीय ज़िलों को 'वर्जित क्षेत्र' घोषित किया गया जिसमें लुशाई हिल्स भी शामिल था। धीरे-धीरे मिजो लोगों में राजनैतिक चेतना जागृत होने लगी। 09 अप्रैल, 1946 को मिजो कॉमन पीपुल्स यूनियन की स्थापना की गई। बाद में इसका नाम मिजो यूनियन में बदला गया। भारत की संविधान सभा में गोपीनाथ बोरदोलाई के नेतृत्व में एक उप समिति का गठन किया और पूर्वोत्तर के जनजातीय इलाकों पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने को कहा गया। इस बीच मिजो हिल्स में एक नयी पार्टी का उद्‌भव हुआ– यूनाइटेड मिजो फ्रीडम ऑर्गनाइजेशन। इस पार्टी ने लुशाई हिल्स को बर्मा में करने की मांग की। बोरदोलाई समिति के सुझावों के मद्देनजर 1952 में लुशाई हिल्स ऑटोनॉमस डिस्ट्रिकट काउंसिल बनाई गई और संविधान की छठी अनुसूची में सम्मिलित की गयी। 1972 तक मिजोरम असम का एक ज़िला था। 1972 में केन्द्रशासित प्रदेश बना और 20 फरवरी, 1987 को एक पूर्ण राज्य बन गया।

पूर्वांचल के सभी राज्यों में पारंपरिक त्योहारों की धूम मची रहती है। मिजोरम में भी लोग रंग-बिरंगे परिधानों में सज-धजकर उल्लास और उमंग के साथ नाचते-गाते त्योहार मनाते हैं।

मिमकुट एक पर्व है– गत वर्ष दिवंगत लोगों को श्रद्धांजलि देने का। यह प्रतिवर्ष अगस्त-सितम्बर में मनाया जाता है। इस मौके पर रोटी (ब्रेड), मकई और सब्जियाँ अर्पण करते हैं और समूह-नृत्य और समूह-गीत भी होता है।

पॉलकुट दिसंबर-जनवरी में मनाते हैं। फसल काटने के बाद धन्यवाद-ज्ञापन के रूप में यह त्योहार मनाया जाता है।

चापचार कुट- हर वर्ष मार्च में मनाए जानेवाले इस त्योहार की धूम पूरे राज्यों में मचती है-सात दिनों तक मनाए जानेवाले इस त्योहार में नृत्य और गीत की प्रतियोगिताएँ होती हैं।

थालफावाङ् कुट खेतों से खरपतवार की सफाई के बाद मनाया जानेवाला एक बहुत बड़ा त्योहार है जिसमें लोग सुंदर, रंगीन पारंपरिक वस्त्र पहनकर नाचते-गाते हैं।

सितंबर मास में मनाया जानेवाला **अनथूरियुम** पर्यटकों को आकर्षित करनेवाला एक त्योहार है। इसमें नाच, गान, खेल, तीरंदाजी, निशानेबाजी और फैशन-शो का आयोजन किया जाता है।

खुआडोकुट फसल काटने के बाद आनेवाली पूर्णिमा की रात को मनाया जानेवाला धार्मिक अनुष्ठान है। लोग मशाल जलाकर बुराइयों से लड़ने की शपथ लेते हैं।

मिजोरम की अधिकतर आबादी ईसाई मतावलम्बी होने के कारण यहाँ क्रिसमस धूमधाम से मनाई जाती है। पूर्वोत्तर का यह पहाड़ी राज्य विकास की दौड़ में तेज गति से आगे बढ़ रहा है।



स्थापना का दिन
20 फरवरी 1987

क्षेत्रफल
21,081 वर्ग किमी.

घनत्व
52 प्रति वर्ग किमी

जनसंख्या (2011)
1,097,206

पुरुषों की जनसंख्या (2011)
555,339

महिलाओं की जनसंख्या (2011)
541,867

जिले 8

राजधानी आइजोल

नदियाँ
चिमतुइपुइ, तलौंग, टूटीस, तुइरिअल

वन एवं राष्ट्रीय उद्यान
फौंगपुइ ब्लू माउंटेन राष्ट्रीय उद्यान, मुरलेन राष्ट्रीय उद्यान, डम्पा टाइगर रिजर्व, तवी वन्यजीव अभयारण्य

भाषाएँ
मिजो, हिंदी, अंग्रेजी

राजकीय पशु
पहाड़ी गिब्बन

राजकीय वृक्ष
नागकेसर

राजकीय फूल
थार सेनहरी

नेट राज्य घरेलू उत्पाद (2011)
48591

साक्षरता दर (2011) 80.11%

1000 पुरुषों पर महिलायें 975

विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र 40

संसदीय निर्वाचन क्षेत्र 1

नागालैण्ड

शान्ति के साथ विकास के पथ पर अग्रसर



■ इदाकलुङ्बे जेलियांग

संगठन सचिव, पश्चिमोत्तर क्षेत्र,
फोकस ऑन नॉर्थ ईस्ट

भारत का 16वाँ राज्य है नागालैण्ड। कभी ऐसा न सोचें कि इंग्लैण्ड, आइलैण्ड, स्काट्लैण्ड, हॉलैण्ड, पोलैण्ड जैसा कोई लैण्ड होगा नागालैण्ड। भारत के अन्य राज्यों से हटकर इस प्रदेश के नाम के साथ 'लैण्ड' लगा है। नागाओं के लिए यह अपना 'होम लैण्ड' है। जैसे उत्तर-पूर्वांचल का रामायण और महाभारत से गहरा संबंध रहा, इसमें नागालैण्ड भी अछूता नहीं है। अर्जुन के एक वर्ष का देशाटन इसी क्षेत्र में हुआ। मणिपुर में चित्रांगदा से विवाह किया तो नागाभूमि में उलूपि से ब्याह रचाया। हिडिम्बा के वंशजों ने 'हिडिम्बापुर' को राजधानी बनाकर राज्य किया। हिडिम्बा की संतान डिम्बासा (डिमासा) काछारी असम और नागालैण्ड में रहते हैं। हिडिम्बापुर कालांतर में डिमापुर बना। डिमापुर आजकल नागालैण्ड में है और नागालैण्ड का एकमात्र रेलवे स्टेशन है। डिमापुर में काछारी-राजाओं का किला आज भी विद्यमान है जो खण्डहर के रूप में दर्शनीय है। किले के स्तंभ के नीचे में जंगरहित लोहे की सरिया प्रयोग की गई है। यह तकनीक दिल्ली के महरौली-स्थित लौह स्तंभ की तकनीक जैसी ही है।

अंग्रेज़ों ने सदियों तक भारत पर अपना आधिपत्य कायम करने के लिए देश को अंदर से खोखला करने की योजना बनाई थी। समाज को अंदर से तोड़ा। विन्ध्य पर्वत के उत्तर के निवासियों को 'आर्य' और दक्षिण में रहनेवालों को 'द्रविड़' बताया। जंगलों में रहनेवालों को 'आदिवासी' करार दिया और पूर्वोत्तरवासियों को मंगोलियाई बताया। पूर्वोत्तर के वन-पर्वतों में वास करनेवाले रामायण-महाभारतकालीन राजवंशियों की संतान को मंगोलियाई नस्ल का बताकर राष्ट्रीय एकात्म चेतना पर कुठाराघात किया। डेढ़ सौ सालों के निरंतर साज़िश का परिणाम यह हुआ कि पूर्वोत्तर की जनजातियाँ स्वयं को भारत की मुख्यधारा से अलग समझने लगीं। शिक्षा और स्वास्थ्य-सेवाओं की आड़ में लोगों का मतांतरण हुआ और अंततः मन परिवर्तन। वे सदा के लिए भारतभूमि और भारतवासियों से नफ़रत करने लगे। विदेशी ताकतों के हाथ के खिलौने बनकर देश को तोड़ने के लिए तैयार हो गए। देश जब आज़ाद हुआ, तब पूर्वांचल के मिज़ो और नागा स्वतंत्र राष्ट्र की मांग को लेकर भारत सरकार के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष करते रहे। सरदार वल्लभभाई पटेल की सूझबूझ और सख़्त रवैये ने देश को बचाया। उत्तर-पूर्वांचल भारत का हिस्सा बनकर रहा।

लेकिन नागालैण्ड के लोगों की भावनाओं को



भारत के ख़िलाफ भड़काया जाना बन्द नहीं हुआ। भूमिगत आतंकवादियों को विदेशी चर्च और पैसे तथा चीन और बर्मा से भरपूर मात्रा में आधुनिक हथियार मिलते रहे। बर्मा और बांग्लादेश में आतंकवादियों के प्रशिक्षण-शिविर चलते रहे। स्वतंत्र भारत की सरकार ने इस समस्या पर गंभीरता से विचार नहीं किया। समस्या पनपती गई और जटिल बनती गयी। इसका नतीज़ा नागालैण्डवासियों को भुगतना पड़ा। पाँच दशकों तक नागालैण्ड अशांत रहा। स्वतंत्र-सार्वभौमिक नागा राष्ट्र के लिए सशस्त्र संघर्ष में भारतीय सेना के जवान मारे गए। सेना की कार्रवाई में स्थानीय लोग भी मरे।

नागालैण्ड के सीमाओं के बाहर असम, अरुणाचलप्रदेश, मणिपुर में भी नागा जनजाति के लोग रहते हैं। बृहत् नागालैण्ड–'नागालिम' के लिए भी मांग हुई। नागालैण्ड और नागा आबादीवाले अन्य राज्यों में इलाकों को इस नक्शे में शामिल किया गया। लंबे समय तक खूनी लड़ाई के बाद भारत सरकार और नागा-संगठनों के बीच 'युद्धविराम' हुआ। शांति के कारण नागालैण्ड विकास कपथ पर अग्रसर हो रहा है।

समय के अनुसार हमें बदलना होगा। देश की अखण्डता, सुरक्षा, विकास को दृष्टि में रखते हुए उत्तर-पूर्वांचल और वहाँ के लोगों से नाता जोड़ना चाहिए।

उत्तर-पूर्वांचल, विशेषकर 'नागा' लोगों के प्रति सरकार और समाज का दृष्टिकोण बदलना चाहिए। यहाँ की नयी पीढ़ी शांति और विकास चाहती है। धीर-धीरे देश के अन्य भागों में नागा युवक-युवती काम की तलाश में जा रहे हैं। आम लोग उत्तर-पूर्वांचलवासियों के बारे में हलकी टिप्पणियाँ कर जाते हैं। इससे आहत होकर असमिया, नागा, मणिपुरी, अरुणाचलवासी, त्रिपुरी आदि-आदि लोगों के मन में भारत और भारतवासियों के प्रति नफ़रत की भावना पैदा होती है। कभी उनकी शक्ल-सूरत को देखकर, बोली-भाषा सुनकर, खान-पान के बारे में बिना सोचे-समझे उनका दिल दुःखानेवाली बातें करते हैं। समय बदल रहा है। समय के अनुसार हमें बदलना होगा। देश की अखण्डता, सुरक्षा, विकास को दृष्टि में रखते हुए उत्तर-पूर्वांचल और वहाँ के लोगों से नाता जोड़ना चाहिए। अतीत में हमारे द्वारा किए गए ग़लत व्यवहार के कारण ईशान्य भारत में अलगाववाद फैल रहा है। देश का प्रत्येक व्यक्ति अपना नज़रिया बदले और देश के अंदर कोई और 'लैण्ड' न बनने दे।



स्थापना का दिन
30 नवंबर 1963
क्षेत्रफल
16,579 वर्ग किमी
घनत्व
119 प्रति वर्ग किमी
जनसंख्या (2011)
1,978,502
पुरुषों की जनसंख्या (2011)
1,024,649
महिलाओं की जनसंख्या (2011)
953,853
शहरी जनसंख्या : में (2011)
28.86%
जिले 11
राजधानी कोहिमा
नदियाँ
दोयांग, दिखू, धनसिरी, चुबी
वन एवं राष्ट्रीय उद्यान
इन्टांकी राष्ट्रीय उद्यान, रंगापहर वन्यजीव अभयारण्य, फकीम वन्यजीव अभयारण्य, पुलिबडजे वन्यजीव अभयारण्य
भाषाएँ
नगामीस, क्रियोल, असमिया, अंग्रेजी
राजकीय पशु
मिथुन
राजकीय पक्षी
ब्लिथ ट्रैगोपान
राजकीय वृक्ष
अल्देर
राजकीय फूल
कोपोऊ
नेट राज्य घरेलू उत्पाद (2011)
52643
साक्षरता दर (2011) 73.45%
1000 पुरुषों पर महिलायें 931
विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र 60
संसदीय निर्वाचन क्षेत्र 1



त्रिपुरी एवं हिन्दुत्व



■ डॉ. अतुल देव बर्मन
लेखक शिशु रोग विशेषज्ञ हैं

त्रिपुरा भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र कर वह राज्य है जिसका तीन-चौथाई क्षेत्र बांग्लादेश से घिरा हुआ है। राज्यकीय ऐतिहासिक राजवंशावली के अनुसार यहाँ द्वापरयुग से अब तक 185 राजाओं ने राज्य किया। प्राचीन काल से ही त्रिपुरावासी यहाँ के वासी हैं जिसका उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। उनकी अपनी परंपराएँ व धार्मिक विश्वास हैं जो परंपरागत हिंदुत्व से भिन्न दिखती हैं। इसी कारण भारत को तोड़नेवाली शक्तियाँ पढ़े-लिखे त्रिपुरावासियों के मन में यह विचार भरती रही कि वे हिंदू नहीं, बल्कि प्रकृति पूजक हैं। उनका धर्म अलग है। तथाकथित सेक्युलर बुद्धिजीवियों के बहकावे में आकर कहने वे मानने लगे हैं कि वे हिंदू नहीं। परिणाम यह हुआ है कि सेक्युलर शिक्षा-पद्धति द्वारा शिक्षित लोग भ्रमित होकर विदेशी मतावलंबियों के षड्यंत्रों का शिकार हो मत-परिवर्तन का मार्ग चुन लेते हैं। तथ्य यह है कि त्रिपुरावासियों का इतिहास लिखनेवालों ने स्वीकार किया है कि त्रिपुरी हिंदू ही हैं। यहाँ हम त्रिपुरावासियों के सिद्धांतों, धार्मिक रीति-रिवाजों तथ रहन-सहन के बारे में वे तथ्य रखूँगा जिनसे सिद्ध होगा कि वे सब हिंदुत्व की मुख्य जीवनधारा से ही एकरस हैं।

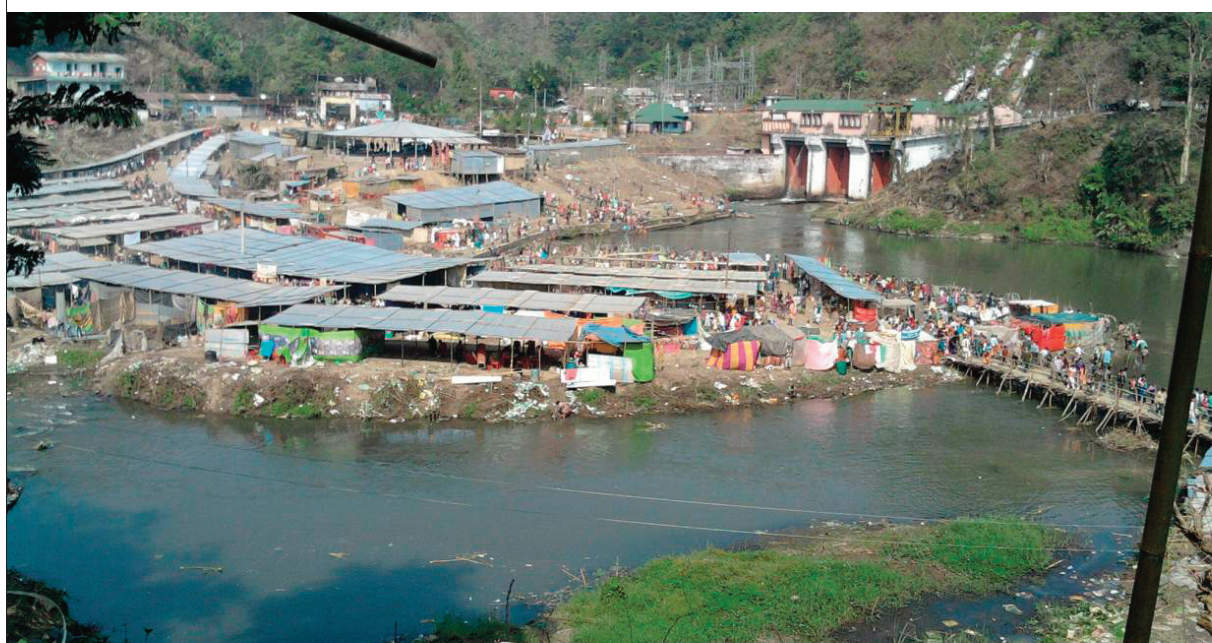
बहुदेववादी विश्वास

त्रिपुरी लोग अनेक देवी-देवताओं को मानते हैं। गोरिया, कालिया, थुमनैरोक, बोनीरोक, आदि देवता हैं तथा मैलूमा, खुलूमा, नोकसूमा आदि देवियों के नाम हैं। वास्तव में देवी-देवताओं की संख्या इतनी अधिक है कि सामान्य व्यक्ति गिन भी नहीं सकता। बहुदेववादी दृष्टिकोण तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं के दृष्टिकोण से पूरी तरह से मिलता-जुलता है।

सर्वशक्तिमान परमात्मा में विश्वास

बहुदेववादी होने के साथ ही त्रिपुरी लोग 'सुबराय' सा 'शिव' के रूप सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ परमात्मा में विश्वास करते हैं। 'शिव' ही परमात्मा हैं जिन्होंने सारी सृष्टि की रचना की है। अन्य सभी देवी-देवता उनके अधीनस्थ हैं, इसीलिए उन्हें 'मुत्ताई कोटोर' या 'महादेव' कहते हैं। **संग्रोंगमा देवी** 'सुबराय' अथवा 'शिव' की पत्नी

त्रिपुरा का इतिहास लिखनेवालों ने स्वीकार किया है कि त्रिपुरी हिंदू ही हैं। जो विशेषताएँ अभी भी हिंदुत्व के अन्तर्गत मानी जाती हैं, वही विशेषताएँ त्रिपुरावासियों के जीवन में परिलक्षित होती हैं।





हैं। 'सर्वशक्तिमान' महादेव की संगिनी हैं तथा सदा उनके साथ ही रहती हैं। वह पृथिवी पर 'भगवती' देवी हैं। जल में 'त्विसंग्रोंगमा' अर्थात् 'जल की शक्ति' के रूप में उपस्थित हैं।

संग्रोगमा के अनेक रूप व नाम हैं। वे 'हचुकमा' या पार्वती, भद्रकाली, रक्षाकाली, निशिकाली आदि अनेक रूप व नामों से जानी जाती हैं। उल्लेखनीय है कि जिस मंदिर में 'शिव' की पत्थर की मूर्ति होगी, वहाँ साथ में शक्ति की प्रतीक माँ की मूर्ति भी अवश्य होगी।

ओसा मुताई अर्थात् 'दुर्गा माता'

नवरात्र (आश्विन मास) के समय मास के 7वें दिन से 4 दिनों तक पूजा की जाती है। प्रत्येक बाजार, गाँव तथा शहर में पूर्ण निष्ठा व भक्तिपूर्वक पारंपरिक शान के साथ यह पूजा की जाती है। भारत के साथ विलय से पूर्व गाँव-प्रमुख, राज्य के गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में पूजा किया करते थे। पूजा के पश्चात् राजा द्वारा आयोजित 'दशेरा' अर्थात् दशहरा अर्थात् 'होसोम भोजन' में सभी अतिथियों को स्वादिष्ट भोजन कराया जाता था।

खरची तथा केर पूजा : यह त्रिपुरी लोगों द्वारा की जानेवाली विशेष पूजा है। खरची पूजा त्रिपुरी लोगों के 14 कुलदेवताओं की पूजा है। यह पूजा आषाढ़ मास में 7 दिनों तक की जाती है। खरची पूजा के 14 दिन पश्चात् केर-पूजा की जाती है। विधि-विधान तथा रीति-नीति की दृष्टि से यह पूजा अति कठोर बंधनों में की जाती है।

गाँवों तथा राज्य के पूरे पूजा-क्षेत्र में मरण शैय्या पर लेटी पड़ी महिलाओं अथवा गर्भवती महिलाओं को रहने की अनुमति नहीं होती। किसी प्रकार के शोर की अनुमति नहीं दी जाती। किसी प्रकार के वाद्य बजाने की अनुमति नहीं दी जाती। हँसने या ऊँची आवाज़ में बोलने की अनुमति नहीं। सभी प्रकार की पूजा हिंदू पंचांग में दी गई तथा भारत सरकार के कैलेंडर में भी! अब त्रिपुरा में देश के अन्य भागों से रहनेवाले नागरिक भी स्थानीय लोगों के साथ इन पूजाओं को बड़े उत्साह व सम्मान के साथ करते हैं।

पंचतत्त्वों के देवता : प्रकृति के पाँच तत्त्वों के देवता (त्रिपुरावासियों के) पृथिवी के लिए 'हयुंगमा' तथा 'संग्रोंगमा मुतई' जल की देवी तोयसंग्रोंगमा, तोयबुकमा; सूर्य देवता 'अग्निदेव' के रूप में (माघ माह में) आकाश के देवता 'अखाता' और वायु के देवता 'बिखाता' माने जाते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि जल तथा पृथिवी के लिए देवियाँ हैं जिन्हें 'माता' के रूप में माना जाता है। शेष तीन तत्त्वों– सूर्य, आकाश तथा वायु के लिए 'देवता' हैं।

धान तथा धन की देवी :

इस देवी को 'मैलुमा' देवी कहा जाता है। यह देवी ढेरों फसलों तथा समृद्धि का तथा परिवार की कुशलता का आशीर्वाद देती हैं। इस देवी की मूर्ति की परिवार में नित्य पूजा की जाती है। परंतु आश्विन मास की पूर्णिमा 'होजागिरि' के अवसर पर विशेष रूप से पूजा की जाती है। यह सभी परिवारों के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पूजा (त्यौहार) है जैसे उत्तर भारत की 'दीवाली'।

कपास तथा ज्ञान की देवी :

इस देवी को 'खुलुमा' के नाम से जाना जाता है। इस देवी के आशीर्वाद से कपास की पर्याप्त फसल होती है तथा विभिन्न रंगों और डिजाइन के कपड़े सीने का ज्ञान प्राप्त होता है। यह पूजा हिंदू पंचांग के माघ शुक्ल पंचमी अर्थात् सरस्वती-पूजन के दिन की जाती है। इस देवी का घरों में प्रतिदिन पूजन किया जाता है। 'मैलूमा' तथा 'खुलूमा', 'लक्ष्मी' तथा 'सरस्वती' देवियों की प्रतिनिधि हैं। इन देवियों को मिट्टी के पात्रों के रूप में गढ़ा जाता है जिनमें 'रॅन्डौक' नाम से प्रचलित उबले हुए चावल रखे जाते हैं। ये दोनों पात्र परिवार के पूजा स्थान पर रखे जाते हैं। परंतु आजकल तांबे के बर्तन

भी प्रचलित हो गए हैं।

घर की देवी : यह देवी 'नोकसूमा' के नाम से जानी जाती है। यह देवी लक्ष्मी तथा सरस्वती देवियों के साथ दायीं ओर स्थापित की जाती हैं। इस देवी को वर्गाकार केन के जाल के रूप में स्थापित किया जाता है। उनके आशीर्वाद से परिवार के सदस्य निरोगी एवं स्वस्थ रहते हैं। प्राकृतिक आपदाओं तथा अन्य दैवीय कोप से भी वे सुरक्षित रहते हैं।

गौरिया

गौरिया नाम के देवता समृद्धि के देवता हैं। युद्ध से बचनेवाले तथा सभी प्रकार के मंगल करनेवाले हैं। सौभाग्य के प्रतीक हैं। विघ्नहर्ता हैं। त्रिपुरी-परिवारों के प्रमुख इष्टदेव हैं। 'श्री गणेश' के लिए त्रिपुरी नाम 'गौरिया' है। गौरी-पुत्र होने के कारण उनका नाम 'गौरिया' है। गणेश जी के हज़ारों नामों में से सबसे प्रमुख नाम 'गौरिया' है। उन्हें 'विनायक' भी कहते हैं। त्रिपुरा के 'नववर्ष' के अवसर पर 1 वैशाख से 7 दिन के लिए लगातार इनकी पूजा की जाती है।

पीपल तथा वट वृक्ष की पूजा :

त्रिपुरी लोग पीपल तथा वट वृक्ष को पवित्र तथा देवता मानते हैं। वे श्रद्धापूर्वक इनकी पूजा करते हैं। लाल वस्त्र के साथ इनकी परिक्रमा करते हैं। इन पेड़ों को काटना 'पाप' की श्रेणी में मानते हैं।

पर्वत, खेत तथा जंगल में देवताओं का वास :

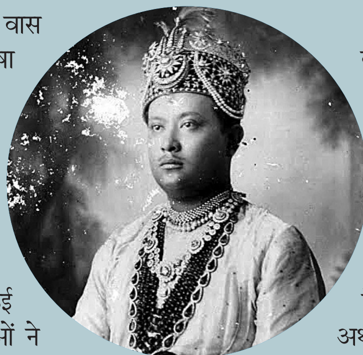
त्रिपुरी लोग पर्वत, ऊँची पहाड़ियों, खेतों तथा जंगलों में देवताओं का वास मानते हैं। कार्तिक मास में वे धान से भरपूर खेतों की पूजा करते हैं। 'हचोमा' नाम की देवी जंगलों की स्वामिनी मानी जाती है। वह जंगल के सभी पेड़-पौधों तथा पशु-पक्षियों की स्वामिनी हैं। जंगल में शिकार पर जाने से पूर्व लोग देवी की 'अनुमति' मांगते हैं।

फोला अथवा आत्मा :

त्रिपुरी लोग 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। आत्मा को वे 'फोला' कहते हैं। वे आत्मा को अविनाशी एवं अमर मानते हैं। आत्मा अदृश्य शक्ति है। जब आत्मा शरीर से चली जाती है, तब शरीर (मनुष्य) मृतक हो जाता है। त्रिपुरी आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। उनकी मान्यता है कि एक शरीर की मृत्यु के पश्चात् आत्मा उसी परिवार या संबंधियों के परिवारों में मनुष्य रूप में पुनर्जन्म लेती है। बीच के अंतराल में आत्मा निम्न श्रेणी के जीवों में वास करती है।

महाभारत काल से जुड़ा हुआ

उत्तर-पूर्वांचल का एक छोटा-सा राज्य है त्रिपुरा जिसके उत्तर, दक्षिण और पश्चिम में बांग्लादेश है और पूर्व में असम व मिजोरम। असम को छोड़कर शेष पूर्वांचल राज्यों में सर्वाधिक आबादी त्रिपुरा की है जो 2011 की जनगणना के अनुसार 36,71,032 है। 19 जनजातियाँ और उपजातियाँ त्रिपुरा में वास करती हैं जिनकी भाषा कोकबोरोक है। लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या बांग्लाभाषियों की है जो पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) से विस्थापित होकर शरणार्थी बनकर त्रिपुरा आयी। कई सदियों तक त्रिपुरी राजाओं ने राज्य किया। अंग्रेज़ों के अधीनस्थ होकर भी त्रिपुरा में राजाशाही रही। 1949 में विलय-संधि के बाद त्रिपुरा भारत में सम्मिलित हो गया। बंगालियों के आगमन से त्रिपुरी की संख्या अल्पमत में चली गयी।



सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक मोर्चों पर बांग्लाभाषियों का ही वर्चस्व है। इस कारण त्रिपुरी लोग असंतुष्ट हैं। जनबल और सत्ताबल के कारण जनजातीय त्रिपुरी लोगों की आवाज़ दबा दी जाती है। त्रिपुरा में साम्यवादी विचार का प्रभाव है। साम्यवादी सरकारें बनती आई हैं। अगरतला त्रिपुरा की राजधानी है जो पश्चिमी भाग में मैदानी क्षेत्र में है। त्रिपुरा में पाँच पर्वतश्रेणियाँ हैं जो उत्तर से दक्षिण की ओर फैली हैं–बोरोमूरा, अथरामूरा, लोङ्थराय, शाखान और जम्बुई का पहाड़। त्रिपुरा की आधी भूमि वन है। इन वनों में बांस और बेंत पाए जाते हैं। त्रिपुरा का इतिहास बहुत प्राचीन है। उनकोटि, पिलक और देवताधमूरा-जैसे धार्मिक स्थान

> **वे लोग मूर्ति के रूप में तथा अमूर्त रूप में अपने देवी-देवताओं का होने में विश्वास करते हैं। प्राचीन काल में वे लोग निराकार देवी-देवताओं की पूजा करते थे, परंतु बाद में उन्होंने मूर्तिपूजा आरंभ कर दी।**

इहलोक-परलोक (यांग मेसिंग-अयंग मेसिंग)

त्रिपुरी लोग इस संसार (यांग मेसिंग या इहलोक) तथा इसके बाद के संसार (अयंग मेसिंग या परलोक) में विश्वास करते हैं। वे विश्वास करते हैं कि इस जन्म में किए कर्मों के आधार पर आत्मा नया जन्म (शरीर) धारण करती है।

साकार-निराकार : वे लोग मूर्ति के रूप में तथा अमूर्त रूप में अपने देवी-देवताओं का होने में विश्वास करते हैं। प्राचीन काल में वे लोग निराकार देवी-देवताओं की पूजा करते थे, परंतु बाद में उन्होंने मूर्तिपूजा आरंभ कर दी। त्रिपुरी राजाओं द्वारा भिन्न-भिन्न समय पर बनाए गए मंदिरों के समान ही इन लोगों ने अपने मंदिर बनाने आरंभ कर दिए हैं।

मुताई रीमा और पूजा :

त्रिपुरी लोग देवी-देवताओं की पूजा

चंद्रवशी राजाओं का राज्य

त्रिपुरी समाज की आस्था के परिचायक हैं। अगरतला का उज्जयन्ता भवन त्रिपुरी राजाओं का राजमहल था। उदयपुर में त्रिपुरा की आराध्य देवी त्रिपुरसुन्दरी का मंदिर है। इसी नाम से राज्य का नाम 'त्रिपुरा' कहलाया। चन्द्रवंशीय राजा ययाति के वंश के राजा द्रुह्यु के बाद 39वाँ वंशज त्रिपुर हुआ था। त्रिपुरा का नाम इसके साथ भी जोड़ा जाता है। कुछ लोगों का मानना है 'तुईप्रा' (त्रिपुरा में तुई-पानी, प्रा-पास)-पानी के पास-बंगाल की खाड़ी के पास होने के कारण इस नाम से जाना जाता था जो कालांतर में तुईप्रा से त्रिपुरा बना। पुराणों, महाभारत और अशोक के शिलालेखों में त्रिपुरा का वर्णन आता है। इसका प्राचीन नाम किरात देश था। त्रिपुरा राजाओं की वंशावली राजमाला ग्रंथ में पाई जाती है जिसमें कृष्ण किशोर माणिक्य (1830-1850) से पहले 179 राजाओं के नामों का उल्लेख है। असम के कामरूप से लकर सुंदरवन तक त्रिपुरा राज्य का विस्तार था जो सिकुड़ता गया।

दिनांक 09 सितम्बर, 1949 को महारानी रीजेन्ट ने भारत विलय पत्र पर हस्ताक्षर करके त्रिपुरा को भारत में विलय कर दिया। नवंबर 1956 में केन्द्रशासित प्रदेश बना। जुलाई 1963 में पूर्ण राज्य का दर्ज़ा मिला। विभाजन के कारण बनी स्थितियों ने त्रिपुरा को बहुत नुकसान पहुँचाया। पूर्वी पाकिस्तान के बनने से अगरतला से कोलकाता की दूरी जो पहले 350 किमी से कम थी, वह अब 1,700 किमी हो गयी। इस कारण व्यापार, उद्योग और आर्थिक विकास के सभी अवसर बाधित हुए। कृषि और छोटे व्यापार से ही लोगों की आमदनी होती है। कोई उद्योग नहीं है। त्रिपुरा में कई छोटी नदियाँ बहती हैं जैसी– ढलाई, मनु, जुरी, लोंगाई, गोमती, मुहूरि और फेनी। सिफाई जाला, गोमती, रोवा और तृष्णा अभयारण्य देखने लायक है। क्लाउडेड लेपार्ड नेशनल पार्क और राजबाड़ी नेशनल पार्क भी पर्यटक देख सकते हैं। अगरतला, उदयपुर की सैर के बिना त्रिपुरा की सैर अधूरी रह जाएगी।

मंत्रोच्चारण द्वारा करते हैं तथा विभिन्न प्रकार के प्रसाद भेंट करते हैं। इनकी क्रिया मुसलमानों और ईसाइयों से भिन्न है। वे लोग अपने देवों के सम्मुख हाथ जोड़कर नमन (नमस्कार) करते हैं।

मंत्रोच्चारण :

मंत्र देवों की पवित्र वाणी है। त्रिपुरी लोग मंत्रोच्चारण से पूर्व ओम् (हांग) का उच्चारण करते हैं।

पुरोहित वर्ग : समाज में पुरोहित श्रेणी का समूह भी है। ये पुरोहित लोग अपने जीवन में कठोर नियमों एवं अनुशासन का पालन करते हैं। वे पूजा-पद्धति तथा पूजा के मंत्रों का प्रशिक्षण लेते हैं तथा इस ज्ञान को गोपनीय रखते हैं। इस ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले जिज्ञासु को गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत 1-3 वर्ष का प्रशिक्षण लेना पड़ता है। यह हिंदुत्व की ब्राह्मण श्रेणी के समान है।

पाषाण-मूर्ति में विश्वास :

त्रिपुरी लोग अखंडित काले पत्थर को पवित्र मानते हैं। इस पत्थर का शिवलिंग बनाकर मंदिर में स्थापित करके इसकी पूजा करते हैं। कुछ अन्य छोटे पॉलिश किए हुए चमकते पत्थरों को लक्ष्मी व सरस्वती के रूप में रौन्डौक (चावल से भरे हुए मिट्टी के पात्रों में रखकर उनकी पूजा करते हैं। ये लोग ऐसा मानते हैं कि लक्ष्मी के रूप में रखा पात्र परिवार के लिए समृद्धि लाते हैं। जब ये पत्थर आकार में बढ़ने लगते हैं तो यह परिवार में समृद्धि की संभावना का प्रतीक माना जाता है।

पशुबलि :

ये लोग मंदिरों में अथवा घरों में पूजा के समय पशु-बलि देते हैं। परिवार की आर्थिक स्थिति के अनुसार ये लोग देवता के सामने मुर्गे या बकरे की बलि देते हैं। कभी-कभी मन्नत पूरे होने पर वचन के अनुसार भी बलि चढ़ाते हैं। अमीर लोग भैंसे की बलि भी चढ़ाते हैं।

मंदिर तथा पूजा की दिशाएँ :

यहाँ हिंदू-परम्परा के अनुसार पूजा पूर्वाभिमुख होकर की जाती है, परंतु विशेष कारण से यदि पूर्व की दिशा में संभव न हो तो दक्षिण दिशा में की जाती है। घर पर देवस्थान पूर्व या दक्षिण की ओर बनाया जाता है। किसी कारणवश मंदिर बनाते समय यह दिशा संभव न हो तो प्रतिमा दक्षिण दिशा में स्थापित की जाती है।

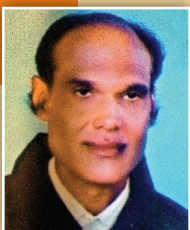
त्रिपुरी लोग अखंडित काले पत्थर को पवित्र मानते हैं। इस पत्थर का शिवलिंग बनाकर मंदिर में स्थापित करके इसकी पूजा करते हैं। कुछ अन्य छोटे पॉलिश किए हुए चमकते पत्थरों को लक्ष्मी व सरस्वती के रूप में रौन्डौक (चावल से भरे हुए मिट्टी के पात्रों में रखकर उनकी पूजा करते हैं। ये लोग ऐसा मानते हैं कि लक्ष्मी के रूप में रखा पात्र परिवार के लिए समृद्धि लाते हैं।

राजाओं ने अपने युग में अनेक मंदिर बनवाए। इसी प्रकार का एक मंदिर उदयपुर में स्थापित किया गया, जिसका नाम है 'देवी त्रिपुरसुंदरी'। इस समय उदयपुर में त्रिपुरा की राजधानी थी। उसी देवी के नाम से विगत दिनों में एक गाड़ी भी चलाई गई जो अगरतला से दिल्ली तक चलती है। ऐसी मान्यता है कि रुद्र ने जब सत्ययुग में क्रोध में अपने संपूर्ण शरीर को कंपायमान किया, तब सती का दाहिना पैर यहीं गिरा था।

यह मंदिर 1501 ई. में महाराजा धन्य माणिक्य द्वारा बनवाया गया। यह 51 शक्तिपीठों में परिगणित है। इस मंदिर में पशुबलि चढ़ाई जाती है। यहाँ एक अन्य मंदिर 'खरची मंदिर' ('14 देवताओं का मंदिर') भी प्रसिद्ध है। 500 वर्ष पुराना प्रसिद्ध शिव मंदिर भी उदयपुर में स्थापित है। राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में राजाओं द्वारा तथा सामान्य जन द्वारा बनाए गए अनेक नये मंदिर भी हैं।

पुरातत्त्ववेत्ताओं से उपेक्षित

त्रिपुरा का उनकोटि तीर्थ



■ ललित शर्मा
लेखक जाने-माने पुरातत्ववेत्ता हैं

भारत गणराज्य का पूर्वोत्तर भूभाग मूलतः आसाम, अरुणाचलप्रदेश, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, नागालैण्ड, त्रिपुरा एवं सिक्किम के रूप में जाना जाता है। यह भूभाग अनेक पौराणिक दैविक कथाओं एवं पुरातात्त्विक महत्त्व से सम्पन्न है, परंतु दुर्गम पथों एवं आवागमन की दृष्टि से सुदूर होने के कारण उतना चर्चित न हो पाया जितना इसे अपने विशिष्ट नैसर्गिक सौंदर्य, तीर्थ-महत्त्व एवं पुरातात्त्विक दृष्टि से होना चाहिए था।

भारत के इसी पूर्वोत्तर भाग में एक छोटा-सा राज्य है त्रिपुरा। इसी राज्य में स्थित है कैला शहर। इस शहर से लगभग 10 से 15 किमी दूर है 'उनकोटि' तीर्थ एवं पुरा महत्त्व का स्थल। कैला शहर से यहाँ तक का मार्ग बांस के वनों से आच्छादित है तथा सर्पीले रूप में है। यहाँ स्थित है पहाड़ियों के मध्य उनकोटि, इस स्थल पर असंख्य पुरातात्त्विक महत्त्व एवं पुराण-कथा से संबंधित ऐसी दुर्लभ और विशाल मूर्तियों का ख़ज़ाना है जिसे देखकर अच्छे-से-अच्छा पुरातत्त्वविद् तथा पुराख्याता भी दाँतों तले अंगुली दबा लेता है। परंतु दुःख की बात का है कि इस दुर्लभ स्थल का अभी तक पुरासर्वेक्षण नहीं हो पाया, वर्ना विश्व-पुरातत्त्व में यह स्थान अपनी विशेषता कभी का दर्ज़ करा सकता था।

सदाबहार वृक्षों से आच्छादित उनकोटि का यह पहाड़ मूलतः रघुनन्दन पहाड़ के नाम से जाना जाता है और इसी में से प्रवाहित होते प्राकृतिक झरने आगे जाकर मनु नदी में रूपान्तरित हो जाते हैं। इस पहाड़ पर असंख्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ विशाल और आश्चर्यचकित करनेवाली हैं। इन मूर्तियों में अनेक मूर्तियाँ शिव, गणेश एवं सिंहवाहिनी दुर्गा की हैं। इन सैकड़ों पाषाण-मूर्तियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध 'उनकोटीश्वर कालभैरव' की मूर्ति अत्यधिक भव्य एवं विशाल है। कालभैरव की इस मूर्ति के मुख की भव्यता इसी से प्रतीत होती है कि इसके दोनों कानों (कर्णों) के मध्य का अन्तर 14 हाथ का है। इसके दोनों कानों में कुण्डलों का आकार बड़े पहियों (बैलगाड़ियों के पहियों) के बराबर तो उसकी मूंछें दोनों ओर डेढ़-डेढ़ हाथ लम्बी हैं। कालभैरव के श्रीमुख की लम्बाई 30 फुट से भी अधिक है। कालभैरव, महादेव शिव के रौद्र स्वरूप एवं तन्त्रशक्ति की शैवोपासना के उद्गायक हैं। कालभैरव की इतनी विशाल मूर्ति विश्व के किसी स्थान से अब तक प्राप्त होने का कोई शोध प्रकाश में नहीं आया है।

वर्ष 1837 ई. में आसाम के भूभाग में आए भूकम्प के कारण उनकोटि की इन मूर्तियों का बहुत कुछ भाग पहाड़ों के फटने से अन्दर धँस गया था। परंतु जो कुछ भी इन मूर्तियों का शिल्प-वैभव शेष रहा, उनमें इतना प्रचण्ड कालभैरव (शिवस्वरूप) का मुख भारतभर के अब तक प्राप्त मूर्तिशिल्प में कहीं भी देखने या पढ़ने में नहीं आया है। अन्तरराष्ट्रीय पुरातत्त्वविद् 'पद्मश्री' एवं इन पंक्तियों के लेखक के गुरुवर्य रहे डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर (उज्जैन-मालवा) ने अप्रैल, 1987 में पुरा-अन्वेषण किया था और उन्होंने ही प्रथम बार इन मूर्तियों का शिल्पगत धर्म वैभव एवं पुरातत्त्व-विश्लेषण किया था। उन्होंने इस बात पर विचार किया कि एक ही स्थान पर सैकड़ों की संख्या में इतनी विशाल और कलावैभवयुक्त मूर्तियाँ पहाड़ों में उत्कीर्ण की गयीं। उन्होंने इस स्थान का दौरा कर यह विचार प्रकट किया कि यह स्थान अत्यंत दुर्गम क्षेत्र में होने के कारण धूप, हवा और मूसलाधार बारिश के प्रकोप को सहता रहा। बीच के समय में आए भूकम्प से एवं 16वीं शती के मध्य में कालापहाड़ द्वारा किए गए विध्वंस से यहाँ की बहुत-सी देव-मूर्तियाँ व उनका शिल्प ध्वस्त होकर यत्र-तत्र बिखर गया था। इन शिल्प-मूर्तियों के अवलोकन सारे पहाड़ी क्षेत्र में होते है। इनमें एक पहाड़ी शिखर पर चतुर्मुखी शिवलिंग है जिसके 3 मुख स्पष्ट हैं, परंतु चौथा मुख पहाड़ के एवं पाषाण-खण्ड के अपक्षय के कारण अस्पष्ट हो गया

माता-पिता, गुरु तथा अतिथिगणः

त्रिपुरी समाज में माँ को पृथिवीतुल्य तथा पिता को आकाश के तुल्य मान्यता दी गई है। वे जीवित देव माने जाते हैं तथा उनके चरण स्पर्श करके धूप, दीप, बाती के साथ विशेष पर्वों पर उनकी पूजा की जाती है। गुरु को परमात्मा की विशिष्ट रचना मानकर, उन्हें उचित सम्मन दिया जाता है। अतिथि को देवता की श्रेणी में सम्मानित किया जाता है। उन्हें 'नरुवाउ' अर्थात् 'नारायण' मानकर स्वादिष्ट भोजन एवं पेय पदार्थ अर्पित किए जाते हैं।

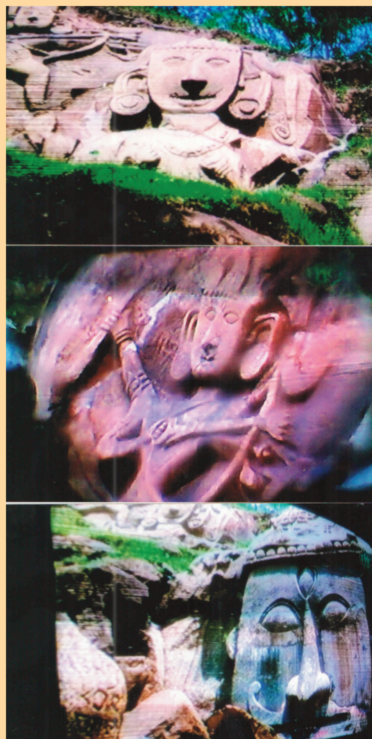
परिवार के बड़े सदस्यों के प्रति आदर की भावना

त्रिपुरी समाज में सबसे बड़े भाई को पिता के समान तथा उनकी पत्नी को माता के समान मानकर परिवार के छोटे भाई-बहन उन्हें उचित सम्मान देते हैं। माता-पिता के भाई बहनों को भी उचित सम्मान दिया जाता है। बड़ों के सामने उचित दूरी रखी जाती है। बड़ों का कभी मज़ाक नहीं उड़ाया जाता। इसी प्रकार पति-पत्नी के बड़े भाई-बहनों का भी सम्मान किया जाता है तथा उचित दूरी रखी जाती है। पति के

है। इस शिखर पर उमामहेश्वर, पंचानन शिव, विष्णु, नरसिंह, आसनस्थ गणेश, हनुमान्, रावण आदि की मूर्तियाँ हैं– ये देव-मूर्तियाँ असंख्य हैं। इसी स्थान पर एक पाषाण मिला है जिस पर दो सुन्दर पदचिह्न उकेरे हुए हैं और वहाँ के क्षेत्रवासी उन्हें भगवान् विष्णु के सुरक्षित पदचिह्न मानते हैं।

पूर्वोत्तर भारत के इस स्थल के बारे में यदि किंवन्दन्तियाँ प्रचलित न हों तो रोचकता ही नहीं आयेगी। यहाँ के वनवासी परिवार इस स्थल के बारे में दो किंवदन्ति बताते हैं। प्रथम तो यह कि कालू नामक एक मूर्तिकार को भगवान् शिव ने स्वप्न में आदेश दिया कि वह मनु नदी के किनारे बने इस रघुनन्दन पहाड़ पर एक रात में यदि एक करोड़ मूर्तियाँ उत्कीर्ण कर देगा तो इस स्थान को काशी के समान महत्त्व प्राप्त हो जायेगा। शिव के स्वप्न के आदेशानुसार कालू ने अपने शिल्पकार सहयोगियों के साथ साँझ ढलते ही मूर्तियाँ बनाने का काम आरंभ कर दिया, परंतु प्रातःकाल जब कौवों की काँव-काँव होने लगी तब तक एक करोड़ (एक कोटि) के लिए एक देव-मूर्ति कम पड़ रही थी– ऐसा भाव कालू के मन में आया। वस्तुतः एक करोड़ (एक कोटि) मूर्तियाँ पूरी हो गयीं। परंतु उनमें एक मूर्ति स्वयं कालू ने भी अपनी ही उत्कीर्ण कर रखी थीं, अतः एक कोटि में एक कम होने से इस स्थल का नाम 'उनकोटि' प्रचलित हो गया।

दूसरी किंवदन्ति के अनुसार एक बार भगवान् शिव एवं अन्य देवगण वाराणसी जा रहे थे, परंतु मार्ग में रात होने के कारण विश्राम हेतु वे सब रघुनन्दन पहाड़ पर ठहरे और सूर्योदय से पूर्व ही उठकर आगे प्रस्थान करने का निश्चय कर वे सो गये। परंतु अगले दिन प्रातःकाल शिव को छोड़कर अन्य सैकड़ों देवगण नींद से नहीं



उठ पाये तब शिव तो अकेले ही वाराणसी की ओर चल पड़े और इधर रघुनन्दन पहाड़ पर सूर्योदय होते ही सैकड़ों देवगण पाषाण की मूर्तियों में परिवर्तित हो गये। तब से ये मूर्तियां उन्हीं की मानी जाती हैं।

ऐसी भी धार्मिक मान्यता है कि महर्षि कपिल ने उनकोटि के शिखर पर तपस्या की थी और वहाँ उनके द्वारा स्थापित शिवलिंग भी है। ऐसा भी कहा जाता है कि इसी शिखर पर महर्षि का आश्रम भी था।

अब यदि लोक-किंवदन्तियों को विलगकर हम उनकोटि की मूर्तियों के शिल्प की प्राचीनता को देखें, तो शिल्प लगभग 12वीं शती के माने जा सकते हैं। त्रिपुरा राज्य के प्रसिद्ध सांस्कृतिक ग्रंथ 'राजमाला' में इन शिल्पों को इसी शती का मानने की बात रेखांकित की गई है। त्रिपुरा राज्य के महाराजा राजधर (1586-1600) स्वयं भी उनकोटि तक गए थे। उनके वहाँ जाने की बात को उक्त ग्रंथ भी पुष्ट करता है। परंतु मूर्तिविज्ञान के तार्किक दृष्टिकोण से यदि इन सैकड़ों देवमूर्तियों का अध्ययन किया जाये, तो यह पता चलता है कि ये सभी मूर्तियां एक ही कालखण्ड में उकेरी न होकर अलग-अलग कालखण्डों में उकेरी गई होंगी। त्रिपुरा का पुरातत्त्व-विभाग उक्त स्थल की कालभैरव की विशाल मूर्ति को कुछ अन्य मूर्तियों के साथ 8वीं शती में उकेरा जाने की बात स्वीकृत करता है।

उनकोटि का स्थल प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर है। यहाँ के पर्वत से प्रवाहित होनेवाले झरनों के कारण यहाँ एक प्राकृतिक कुण्ड भी बन गया है। अशोकाष्टमी को इस कुण्ड में स्नान करने से गंगा के समान पुण्य की प्राप्ति की भी बड़ी लोक-आस्था है। इस जन व ग्रामीण भावना के कारण यहाँ लाखों की संख्या में वनवासी और नगरीय संस्कृति के परिवार एकत्रित होते हैं। फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी (महाशिवरात्रि) एवं मकर संक्रान्ति को भी यहाँ बड़ा मेला लगता है।

इस स्थल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ कोई मन्दिर नहीं है। उक्त कुण्ड को ही यहाँ 'अष्टमी कुण्ड' या 'सीता कुण्ड' कहते हैं।

इस प्रकार भारत के इस पूर्वोत्तर क्षेत्र का यह स्थल अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ उनकोटि के शिल्प एवं कालभैरव-जैसी भव्य और विशाल अद्भुत मूर्तियों का प्रभावित और आश्चर्यचकित कर देने योग्य रेखांकन यहाँ आनेवाले पर्यटकों, श्रद्धालुओं और पुरातत्त्वविदों को रोमांचित कर देता है।

बड़े भाइयों को छोटे भाइयों की पत्नियों को छूने की अनुमति नहीं। इसी प्रकार पत्नी की बड़ी बहनों को छोटी बहनों के पतियों से शारीरिक दूरी बनाकर रखने के आदेश हैं। परंतु इसके विपरीत बड़े भाई की पत्नी तथा बड़ी बहन के पति छोटे भाई-बहनों के साथ हँसकर बोल सकते हैं तथा मनोरंजन कर सकते हैं। दादी-दादा अपने पोती-पोतों के साथ हँसी-मज़ाक कर सकते हैं।

जन्म के समय के रीति-रिवाज एवं संस्कार :

पुरोहित 'ऑकाई' महिला की गर्भावस्था की पुष्टि होने पर प्रथम संस्कार (पूजा) करते हैं। गर्भावस्था के 5वें माह में एक और पूजा की जाती है। बच्चे के जन्म के समय एक और पूजा की जाती है। बच्चे के जन्म के 7वें दिन 'व्रत' (नामकरण-संस्कार) किया जाता है। 6 माह पूरे होने पर बच्चे को प्रथम ठोस भोजन 'मैटुकमनी' (अन्नप्राशन) दिया जाता है। इसी प्रकार कर्णवेध-संस्कार तथा अन्य संस्कार भी किए जाते हैं।

विवाह-संस्कार :

विविध प्रकार की रीतियों एवं पूजाओं के साथ पारिवारिक 'देवता' तथा 14 देवों की उपस्थिति में विवाह संपन्न किया जाता है।

विवाहित महिलाएँ रंग-बिरंगे उत्तम वस्त्र पहनती हैं। शरीर के विभिन्न अंगों को स्वर्णाभूषणों से सज्जित करती हैं तथा रंग-बिरंगी सुंदर चूड़ियाँ पहनती हैं। लाल रंग सुहागिन महिलाओं की पहचान है। वे सिंदूर भी लगाती हैं। परंतु विधवा तथा तलाकशुदा महिलाएँ मांग में सिंदूर लगाने, माथे पर बिंदी लगाने तथा रंग-बिरंगे कपड़े तथा अधिक आभूषण पहनने से परहेज करती हैं। वे सादा व सरल जीवन जीती हैं। हल्के रंगों के कपड़े पहनती हैं। हिंदू पंचांग के भाद्रपद, पौष तथा चैत्र मास में विवाह निषेध हैं। इन मासों में किसी प्रकार की पूजा अथवा भड़कीले आयोजन नहीं किए जाते। त्रिपुरा में इन महीनों में कोई त्यौहार नहीं मनाया जाता।

मृत्यु के समय के संस्कार :

मृत्यु के पश्चात् शरीर को घर से बाहर आंगन में रखते हैं। गीता तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों का पाठन किया जाता है। बाद में श्मशान भूमि पर अंतिम संस्कार के लिए ले जाते हैं। मृतक का सिर उत्तर दिया की ओर रखा जाता है। मृतक का ज्येष्ठ पुत्र मुखाग्नि देता है। पुरुष के लिए 12 दिन का तथा महिला के लिए तीन दिन का शोक काल रखा जाता है। इस शोककाल में सभी रिश्तेदार कठोर नियमों का पालन करते हैं। तेल, साबुन, का प्रयोग नहीं करते। सादा व शाकाहारी भोजन करते हैं। 13वें दिन श्राद्ध सम्पन्न किया जाता है।

धार्मिक पुस्तकें :

त्रिपुरी समाज में भगवद्गीता, रामायण व महाभारत पवित्रतम ग्रंथ माने जाते हैं। इन ग्रंथों के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं तथा कभी पैरों से स्पर्श न करने का ध्यान रखते हैं। इन ग्रंथों को नमन करते हैं तथा पूजन करते हैं।

गंगा एवं गोमाता

भारत के अन्य भागों की तरह त्रिपुरा में भी गंगा को पवित्रतम नदी मानते हैं। यहाँ पूजा के लिए जलपात्र में गंगाजल की कुछ बूँदें डालकर पूरे पानी को गंगाजल जैसा पवित्र मान लिया जाता है।

गाय को दिव्य माना जाता है। नव वर्ष के त्यौहार के अवसर पर गायों व बैलों की पूजा की जाती है। उनके गले में माला डाली जाती है तथा माथे पर तिलक किया जाता है। दुर्भाग्यवश यदि किसी कारणवश किसी गाय या बैल की मृत्यु हो जाए, तो उसका पश्चाताप करना पड़ता है, शुद्धिकरण करवाना पड़ता है। त्रिपुरा में किसी को भी गोमांस भक्षण या गोहत्या करने की अनुमति नहीं है क्योंकि यह बहुत भयंकर पाप माना जाता है।



तीर्थस्थान :

स्थानीय तीर्थस्थानों के अतिरिक्त गया, काशी, वृन्दावन, मथुरा, हरिद्वार, ऋषिकेश तथा अन्य सभी हिंदू-तीर्थस्थानों का प्रति आस्था व श्रद्धा का भाव रखते हैं। अवसर मिलने पर या अच्छी आर्थिक स्थिति की उपलब्धता होने पर त्रिपुरावासी जीवन में एक बार सभी तीर्थस्थानों की यात्रा व दर्शन करने की भावना व इच्छा रखते हैं।

> त्रिपुरी समाज में भगवद्गीता, रामायण व महाभारत पवित्रतम ग्रंथ माने जाते हैं। इन ग्रंथों के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं तथा कभी पैरों से स्पर्श न करने का ध्यान रखते हैं। इन ग्रंथों को नमन करते हैं तथा पूजन करते हैं।

संन्यासी एवं साधु : कुछ लोग दैवीय एवं आध्यात्मिक प्रेरणा से ब्रह्मचर्य-व्रत अपना लेते हैं तथा लाल या भगवे वस्त्र धारण कर लेते हैं और जीवन में कठोर पवित्रता व सादगी का पालन करते हैं। कुछ लोग हिंदू-संतों से संन्यास की दीक्षा ले लेते हैं। कुछ लोग पारिवारिक उत्तरदायित्वों से पूर्णतया मुक्त होकर प्रौढ़ावस्था में संन्यास लेते हैं तो कुछ लोग वैष्णव-पद्धति से संन्यासी जीवन बिताते हैं तथा शुभ्रवस्त्र धारण करते हैं।

रुद्राक्ष, तुलसी, सिंगों तथा शंखों का प्रयोग :

निष्ठावान् भक्त पूजा के समय शंख, संगी, या घड़ियाल तथा घंटा/घंटी बजाते हैं। इन वाद्यों को पवित्र माना जाता है। शैव और शाक्त भक्त गले में या बाँह पर रुद्राक्ष की



माला पहनते हैं। वैष्णव भक्त तुलसी माला तथा मनके पहनते हैं।

संक्रांति :

त्रिपुरा में पौष माह के अंतिम दिन, जिसे 'हंगराई' कहते हैं, संक्रांति-पर्व मनाया जाता है। इस दिन लोग अपने मृतक संबंधियों की अस्थियाँ तथा भस्म नदियों में या तीर्थस्थानों में विसर्जित करते हैं।

अन्य प्रथाएँ तथा रीति-रिवाज :

अपने भले के लिए ये लोग ताबीज, कबाज तथा तंत्र-मंत्रों का प्रयोग करते हैं। पूजा में वे नारियल तथा केले भेंट चढ़ाते हैं तथा वट वृक्ष के पत्ते साथ रखते हैं। ये सब वस्तुएँ पवित्र मानी जाती हैं। बेल और तुलसी के पत्तों का सम्मान किया जाता है व पूजा में इनका उपयोग किया जाता है। मूर्ति के सामने ताम्रपात्र में पानी भरकर उसे स्वच्छ कपड़े से ढक दिया जाता है। सभी धार्मिक आयोजन तथा विवाह तिथि तथा नक्षत्र के अनुसार शुक्ल पक्ष में निर्धारित किए जाते हैं। मासिक धर्म के काल में महिलाओं को अशुद्ध माना जाता है। अतः वे इन दिनों में पूजा के लिए किसी मंदिर में नहीं जातीं। किसी भी पूजा-विधि से पूर्व त्रिपुरा के लोग स्वयं को शुद्ध या पवित्र बनाते हैं। शुद्धि के लिए पूजा के दिन से पूर्व की रात्रि में वे केवल शाकाहारी भोजन खाते हैं तथा पूजा से पूर्व स्नान करते हैं।

ये लोग सामान्यतया सोते समय अपना सिर पश्चिम या उत्तर की दिशा में नहीं रखते। केवल पूर्व या दक्षिण की दिशा में सिर रखते हैं। पुराने ज़माने में ये लोग अपने बच्चों के नाम देवी-देवताओं एवं धार्मिक व ऐतिहासिक महापुरुषों के नाम पर रखते थे। उदाहरण के लिए शिव, राम, कृष्ण, गणेश, कार्तिक, भरत, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम आदि। साथ ही नाम के दूसरे भाग में कुमार, चन्द्र, पद, चरण आदि जोड़ देते थे। इसी प्रकार लड़कियों के नाम पार्वती, दुर्गा, सीता, गीता, सावित्री, द्रौपदी, लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा आदि के साथ रानी, कुमारी, वती आदि लगाते थे।

भारत विविधताप्रधान देश है। यहाँ जलवायु, भौगोलिक, मौनसून, फसल, भाषा, वेशभूषा, भोजन, सभ्यता, संस्कृति, रीति-रिवाज संप्रदाय, धर्म, देवी-देवता आदि से संबंधित अनेक विविधताएँ हैं। यद्यपि हिंदुत्व में विधि-विधान, रीति-रिवाज की अनेक समानताएँ हैं, तथापि यहाँ स्थानीय रूप से अनेक विविधताएँ हैं। उत्तर भारत में दीवाली, होली अत्यंत प्रमुख व प्रसिद्ध त्यौहार हैं, परंतु दक्षिण भारत में ऐसा नहीं है। आश्विन मास के नवरात्रों में उत्तर भारत में रामलीलाएँ होती हैं। पूर्वी भारत में 'दुर्गा पूजा' की जाती है। पश्चिमी भारत, विशेष रूप से गुजरात में 'गरबा' के माध्यम से उत्सव मनाया जाता है। उत्तर भारत में कृष्णजन्माष्टमी के अवसर पर मंदिरों में पूजा करके उत्सव मनाया जाता है, परंतु महाराष्ट्र में 'दही हांडी' के माध्यम से उत्सव मनाया जाता है। गणेश चतुर्थी महाराष्ट्र का सबसे बड़ा त्यौहार है। परन्तु देश के अन्य भागों में ऐसा नहीं है। फिर भी ये सभी त्यौहार 'हिंदू त्यौहार' के नाम से प्रचलित हैं। इस प्रकार भारत में विविधता के कुछ उदाहरण हैं।

यहाँ हमने त्रिपुरा से संबंधित विभिन्न पक्षों के बारे हिंदुत्व की तुलना में वर्णन किया है। जो विविधताएँ अभी भी हिंदुत्व के अंतर्गत मानी जाती हैं, वही विविधताएँ जब त्रिपुरियों की हैं, तो उन्हें हिंदुत्व के अंतर्गत क्यों नहीं स्वीकार किया जाना चाहिए?



स्थापना का दिन
21 जनवरी 1972
क्षेत्रफल
10,486 वर्ग किमी
घनत्व
350 प्रति वर्ग किमी
जनसंख्या (2011)
3,673,917
पुरुषों की जनसंख्या (2011)
1,874,376
महिलाओं की जनसंख्या (2011)
1,799,541
जिले 8
राजधानी अगरतला
नदियाँ
बुरिमा, गोमती, खोवाई, धलाई, मुहूरी, फेनी, जूरी आदि
वन एवं राष्ट्रीय उद्यान
क्लउडेड लेपर्ड राष्ट्रीय उद्यान, रोवा वन्यजीव अभयारण्य, बाइसन राष्ट्रीय उद्यान, तृष्णा वन्यजीव अभयारण्य
भाषाएँ
बंगाली, कोकबोरक, मणिपुरी, नोयाखली, चकमा
राजकीय पशु
फायरे का लंगूर
राजकीय पक्षी
ग्रीन इंपीरियल कबूतर
राजकीय वृक्ष
अगर
राजकीय फूल
नागेश्वर
नेट राज्य घरेलू उत्पाद (2011)
50750
साक्षरता दर (2011) 79.63%
1000 पुरुषों पर महिलायें 961
विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र 60
संसदीय निर्वाचन क्षेत्र 2

The Core_September_Issue 2016:Layout 1 10/10/2016 3:09 PM Page 52



■ डॉ. एस. मिमोदा देवी
एम.एससी., पीएच. डी.

अरुणाचलप्रदेश अरुणोदय की धरती

जहाँ सूरज की पहली किरण भारत की धरती को स्पर्श करती है, वह भूमि अरुणाचलप्रदेश है। पूर्वोत्तर के राज्यों में सर्वाधिक क्षेत्रफलवाला, किन्तु आबादी का बहुत कम अनुपातवाला यह राज्य ऊँचे पहाड़ों और घने जंगलों के बीच बसा हुआ है। दक्षिण में असम और नागालैण्ड, उत्तर में चीन, पूर्व में बर्मा और पश्चिम में भूटान के साथ इसकी सीमाएँ लगती हैं। भारत के किसी एक प्रदेश में अधिक प्रादेशिक भाषाएँ बोली जाती हैं तो वह है अरुणाचलप्रदेश। हाल के कुछ वर्षों से भारत के अनेक प्रदेशों के लोग अरुणाचल जाकर व्यापार और व्यवसाय प्रारंभ कर रहे हैं।

कल्किपुराण एवं महाभारत में जिस प्रभु पर्वत का वर्णन है (जहाँ परशुराम ने अपने पाप धोए), वह अरुणाचलप्रदेश में है। मान्यता है कि महर्षि वेदव्यास ने यहीं तपस्या की। राजा शीष्मक का राज्य भी यहीं है और भगवान् कृष्ण ने यहीं से रुक्मिणी का हरण किया। असम के अहोम और सुतिया राजाओं का इस पर्वत क्षेत्र पर शासन रहा।

अरुणाचलप्रदेश के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में रहनेवाले मोनपा और शेर्डुकपेन लोगों ने ऐतिहासिक दस्तावेज रखे जिसके अनुसार 500 ई.पू. से 600 ई. के मध्य मोन्यूल के मोनपा-राजाओं ने यहाँ शासन किया। अरुणाचल का भूभाग 1858 तक अहोम-राजाओं के नियंत्रण में था। 1858 में अंग्रेज़ों ने इसे अपने नियंत्रण में ले लिया। अरुणाचल के लोग 1947 तक अपना स्थानीय स्वायत्त शासन चलाते थे। सियांग पहाड़ी की तलहटी के निकट उत्खनन से 14वीं शताब्दी में निर्मित मालिनी धान मंदिर निकला जिसका निर्माण असम के सुतिया राजाओं ने करवाया। विश्व के सबसे ऊँचे स्थान पर बना 400 वर्ष पुराना तवांग बौद्ध विहार छठे दलाई लामा त्साङ्याङ् ग्यात्सो (1683-1706) का जन्मस्थान है। विवादित मैकमोहन रेखा चीन के अधीनस्थ तिब्बत और अरुणाचलप्रदेश के बीच की अंतरराष्ट्रीय सीमा है। चीन इसे अस्वीकार करते हुए अरुणाचल पर अपना दावा जताता रहता है। पूर्वांचल के अन्य राज्यों में अलगाववाद और आतंकवाद की लपटें सुलगती रहती हैं। अशांत क्षेत्र घोषित कर सेना को तैनात किया जाता है। लेकिन अरुणाचलप्रदेश और सिक्किम शांतिप्रिय राज्य हैं। नागालैंड से सटे हुए तिरप और चाङ्लाङ् जिलों में थोड़ी अशांति है।

आज़ादी के पश्चात् 1955 में नार्थ-ईस्ट फ्रंटीयर एजेन्सी (नेफा) बनाई गई जो वर्तमान में अरुणाचलप्रदेश है। लगभग एक



दशक तक भारत और चीन के बीच विवाद नहीं रहा। लेकिन 1962 में इसी मुख्य मुद्दे पर दोनों देशों के बीच युद्ध छिड़ गया। चीन ने अरुणाचलप्रदेश की अधिकतर भूमि पर कब्ज़ा कर लिया। लेकिन शीघ्र ही वापस मैकमोहन रेखा पर लौट गया और 1963 में युद्धबंदियों को छोड़ दिया। चीन भले ही त्यांग को अपना बताता हो, लेकिन वास्तव में वह भारत की भूमि है। 20 जनवरी, 1972 को नेफा से बदलकर अरुणाचलप्रदेश बना। अरुणाचलप्रदेश 15 वर्षों तक केन्द्रशासित प्रदेश रहा। 20 फरवरी, 1987 को इसे पूर्ण राज्य का दर्ज़ा प्राप्त हुआ। अरुणाचलप्रदेश में प्रवेश हेतु इनर लाइन पर्मिट की आवश्यकता होती है जो दिल्ली या गुवाहाटी से प्राप्त की जा सकती है।



अरुणाचलप्रदेश हिमालय और पटकाय पर्वतों का क्षेत्र है। कांग्तो, न्येगी कांगसांग, गोरीचेन– ये यहाँ के उत्तुंग शिखर हैं। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से नदियाँ प्रवाहित होती हैं। पूरे प्रदेश में पाँच घाटियाँ हैं, जैसे– कामेंग, सुबानसिरी, सियांग, लोहित और तिरप। सियांग, जो तिब्बत में त्सागपो कहलाती है, सर्वाधिक शक्तिशाली है जो आगे चलकर लोहित और तिरप के साथ जुड़कर असम में ब्रह्मपुत्र बन जाता है। 2000 मिमी से लेकर 4100 मिमी (79'-161'') तक का वर्षपात होता है-मई से सितम्बर के बीच।

विकास की दौड़ में अरुणाचलप्रदेश बहुत तेज गति से आगे बढ़ रहा है। बृहत् जलविद्युत परियोजनाओं का निर्माण हो रहा है। सभी जिला-केन्द्रों को आपस में सड़क-मार्ग से जोड़ने की कोशिश की जा रही है।

सुंदर, शांत, घने जंगल, उत्तुंग पर्वत शिखर, भिन्न-भिन्न बोली भाषा के सीधे-सरल लोग, रंग-बिरंगे परिधान, विविध त्योहार– ये सब देखकर ही कोई अनुभव कर सकता है।



स्थापना का दिन
20 फरवरी 1987

क्षेत्रफल
83,743 वर्ग किमी

घनत्व
17 प्रति वर्ग किमी

जनसंख्या (2011)
1,383,727

पुरुषों की जनसंख्या (2011)
713,912

महिलाओं की जनसंख्या (2011)
669,815

जिले 18

राजधानी ईटानगर

नदियाँ
सियांग और उसकी सहायक नदियां- तीरप, लोहित, सुबनसीरी, दिबांग, कामेंग, दिकरोंग, दिहिंग

वन एवं राष्ट्रीय उद्यान
नमदाफा राष्ट्रीय उद्यान,
मोंलिंग राष्ट्रीय उद्यान

भाषाएँ
मोनपा, मिजी, अका, शेरदुकपेन, अपतानी, अदी, हिल मिरी

राजकीय पशु
मिथुन

राजकीय पक्षी
ग्रेट इंडियन हर्नबिल

राजकीय वृक्ष
होलोंग

राजकीय फूल
रेटुसा

नेट राज्य घरेलू उत्पाद (2011)
55789

साक्षरता-दर (2011) 66.95%

1000 पुरुषों पर महिलायें 920

विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र 60

संसदीय निर्वाचन क्षेत्र 2

सिक्किम

जहां मन मोह लेते हैं पवित्र स्थल और बर्फीले पर्वत



■ डॉ. बबिता कुमारी
शोधार्थी, डी. लिट, इतिहास, यू.जी.सी.: नेट, पी.एच.डी., एम.बी., ए., बी.एड.

किसी पर्यटन-स्थल का भ्रमण करना हमेशा ही एक रोमांचकारी अनुभव होता है और आप वहाँ से लौटते वक्त अकेले नहीं होते, आपके साथ होती हैं वहाँ की ढेर सारी यादें। बात चाहे किसी ऐसी जगह पर जाने की हो जहाँ लोग पहले भी जा चुके हैं या फिर ऐसी जगह की जहाँ ज्यादा लोग नहीं गए, दोनों ही स्थिति में आपको कुछ नया देखने और सीखने को मिलता है। पर जब बात आती है उस जगह पर जाने की, जिसे अपने सुन्दर प्राकृतिक स्थल, बर्फ से ढके पहाड़ों, रंग-बिरंगे फूलों से बिछे मैदान, प्राचीन पानी के पिंड और कई और वजहों से स्थानीय निवासियों द्वारा 'ज़न्नत' के नाम से पुकारा जाता है, तो सफर शब्द ही अत्यंत मोहक लगने लगता है।

पर ऐसी कौन सी जगह हो सकती है जो इतनी आकर्षक हो कि कुछ शब्द ही उसे अद्भुत और बेमिसाल बना दें? हम बात कर रहे हैं शानदार सिक्किम की। सिक्किम को भारत के सुन्दर स्थानों में से एक माना जाता है और प्रकृति के वरदान से भरी यह जादुई जगह हिमालय पर्वत क्षेत्र में स्थित है। ऐसी कई जगहों में यह जगह भी कई महत्त्वपूर्ण स्थानों के लिए मशहूर है और यह कहा जाता है कि अपने जीवनकाल में आप यहाँ नहीं गए तो आपने कुछ खोया है। आइये इस अज्ञात पहाड़ीवाले भारतीय राज्य के बारे में कुछ जानें।

सिक्किम का भूगोल

सिक्किम एक पहाड़ी इलाका है जो हिमालय पर्वत इलाके में बसा है। सिक्किम राज्य में कई पहाड़ी जगह हैं जिनकी ऊँचाई 280 मीटर से 8,585 मीटर तक है। राज्य का सबसे ऊँचा बिंदु माउंट कंचनजंघा है, जिसे पृथिवी की तीसरी सबसे ऊँची चोटी के रूप में भी जाना जाता है। सिक्किम की सीमा के पूर्व में भूटान, पश्चिम में नेपाल और उत्तर में तिब्बत की ऊँची चौरस भूमि पड़ती है। इस राज्य में करीबन 28 पर्वत हैं, करीबन 227 अत्यधिक ऊँचाईवाले तालाब और 80 हिम नदियाँ हैं। एक ऐसी चीज जो यहाँ की भौगोलिक स्थिति को और अनोखा बनाती है, वह है यहाँ मौजूद करीब 100 नदियाँ और धार और कई प्रमुख गर्म सोते। सिक्किम का गर्म सोता, जिसका स्वाभाविक औसतन तापमान 50 डिग्री सेल्सियस होता है, काफी खास है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि इसमें कई रोगों को दूर करने की ताक़त है। इस जगह की भौगोलिक स्थिति पर ध्यान देने से पता चलता है कि सिक्किम का करीबन एक तिहाई भाग घने जंगलों और बर्फ से ढकी धाराओं की शृंखलाओं से घिरा है जो तीस्ता नदी से आकर जुड़ती है, जिसे 'सिक्किम की जीवनरेखा' भी कहते हैं।

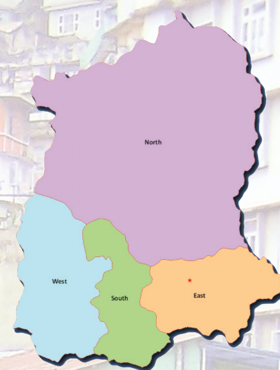
मौसम

जितनी खूबसूरत जगह, उतना ही खूबसूरत मौसम है सिक्किम का। सिक्किम भारत के उन चुनिन्दा राज्यों में आता है जहाँ हर साल नियमित तौर पर बर्फबारी होती है। यहाँ के निवासी हमेशा नियंत्रित और सुहाने मौसम का लुत्फ उठाते हैं। यहाँ का मौसम उत्तरी क्षेत्र में टुण्ड्रा से पूर्वी क्षेत्र में उपोष्ण कटिबंधीय मौसम में बदल जाता है। उत्तरी क्षेत्र, जहाँ टुण्ड्रा मौसम पाया जाता है, हर साल चार महीने के लिए बर्फ से ढका रहता है और यहाँ का तापमान 0 डिग्री सेल्सियस तक नीचे गिर जाता है। यहाँ का मौसम सुहाना इसलिए भी रहता है क्योंकि यहाँ का तापमान गर्मियों में कभी 28 डिग्री सेल्सियस से ज्यादातर बढ़ता नहीं है और ठण्ढ में 0 डिग्री सेल्सियस पर जमता नहीं है। मानसून थोड़ा ख़तरनाक है क्योंकि इस दौरान यहाँ भारी बारिश होती है जिससे भूस्खलन होने का डर रहता है और पर्यटकों को यह सलाह दी जाती है कि वह इस समय यहाँ आने से बचें।

सिक्किम जाने पर आपको यह सलाह दी जाती है कि कुछ प्रमुख जगहों को ज़रूर देखें और यहाँ की गतिविधियों में हिस्सा लें। यहाँ का प्रमुख स्थल है गंगटोक जहाँ पहुँचकर आप त्सोम्गो झील, डियर पार्क, नाथुलापास, रूमटेकमठ, इंचीमठ, तशी दार्शनिक स्थल और लाल बाज़ार नाम का स्थानीय बाज़ार घूम सकते हैं और अपने ख़ास लोगों के लिए उपहार खरीदकर ले जा सकते हैं। यहाँ की कुछ और मशहूर जगह है सिक्किम के महान् साधु पद्मसंभव की सबसे ऊँची मूर्ति जो नामची में मौजूद है; सुन्दर रोडो डेनड्रोन सैंक्चुअरी, जिसमें राज्य की विभिन्न प्रजाति के फूल मौजूद हैं; कंचनजंघा पर्वत जो दुनिया का तीसरा सबसे ऊँचा पर्वत है; कई पवित्र और चमकीले बौद्ध मठ; सुन्दर हरी घाटियाँ और नदियाँ; सिक्किम का मशहूर गर्म सोता, कुछ अनदेखे स्थल जो बस्ती और पारिस्थिति भी पर्यटन के लिए उपयुक्त है, घाटियों की श्रृंखला जो साहसी और जोखिमभरे खेल-कूद के लिए सही है।

सिक्किम का खाना और संस्कृति दो चीजें हैं जिसने इस छोटे, सुन्दर जगह को एक महत्त्वपूर्ण जगह दी है। सिक्किम के लोग ज्यादातर चावल खाते हैं। सिक्किम के कुछ प्रमुख परंपरागत व्यंजन हैं– मोमो, चाऊमीन, वानटोन, फकथू, ग्याथुकयाथुकपा- नूडल पर आधारित सूप, फग्शापा और चुर्पी के साथ निंग्रो। मदिरा पर आधारित पेय पदार्थ भी सिक्किम के लोगों द्वारा लिए जाते हैं। यहाँ के स्थानीय बौद्ध सिक्किमी द्वारा मनाए जानेवाले कुछ परंपरागत त्यौहार हैं माघे संक्रांति, भीमसेन पूजा, द्रुपकातेशी, लोसर, बुम्चु, सगादावा और लूसांग। सिक्किम में बसी नेपाली जनता सारे हिंदू त्यौहार भी मनाती है। इतना सब कुछ होने पर यह ताज्जुब की बात नहीं है कि सिक्किम नाम का यह राज्य धीरे-धीरे भारत के प्रमुख पर्यटन-स्थलों में से एक बनता जा रहा है। आइये यह समृद्ध राज्य घूमकर इसके बारे में और जानें जहाँ पर छुट्टियाँ बिताना एक अद्भुत और रोमांचकारी अनुभव हो सकता है।





स्थापना का दिन
15 मई 1975

क्षेत्रफल
7,096 वर्ग किमी

घनत्व
86 प्रति वर्ग किमी

जनसंख्या (2011)
610,577

पुरुषों की जनसंख्या (2011)
323,070

महिलाओं की जनसंख्या (2011)
287,507

जिले 4

राजधानी गंगटोक

नदियाँ
तीस्ता, चोलामु, रंगीत

भाषाएँ
नेपाली, लिम्बु, माझी, मझवार, सिक्किम, शेरपा, तमांग, तिब्बती, अंग्रेजी, हिंदी आदि

राजकीय पशु
लाल पांडा

राजकीय पक्षी
रक्त मनाल

राजकीय वृक्ष
बुरांस

राजकीय फूल
नोबल आर्किड

नेट राज्य घरेलू उत्पाद (2011)
81159

साक्षरता दर (2011) 87.75%

1000 पुरुषों पर महिलायें 889

विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र 32

संसदीय निर्वाचन क्षेत्र 1

दार्जिलिंग

उत्तर-पूर्व पर्वतों की रानी

■ डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता

सिक्किम से सटकर और कंचनजंघा-जैसे सुरम्य पर्वत की गोद में बसी हुई दार्जिलिंग प्रकृति की लाडली पुत्री है। यहाँ प्रकृति का जैसा सजा-सँवरा अनोखा नज़ारा देखने को मिलता है, वह विश्व के रंगमंच पर कदाचित् दुर्लभ ही है। वस्तुतः गज़ब का शहर है दार्जिलिंग। प्राकृतिक सौंदर्य का आगार। सैलानियों का स्वर्ग। कालिदास-वर्णित अलकापुरी का ऐश्वर्य। यक्षनगरी की विभूति। प्रातःकालीन कोहराविहीन आकाश में जब सूरज की सुनहली किरणें कंचनजंघा के श्वेत शिखरों को नहलाती हैं, तब उस रंग-बिरंगी इन्द्रधनुषी छटा में वनफूलों की मुस्कान अनुपम शोभा बिखेर देती है। स्वर्गिक सौंदर्य के पिपासु और पारखियों ने विस्मय-विमुग्ध होकर इसे पर्वतों की रानी कहकर अपनी भावांजलि अर्पित की तो इसमें आश्चर्य की बात क्या है !!! जिसने एक बार भी टाइगर हिल के प्रातःकालीन सूर्योदय के अलौकिक दृश्य का अवलोकन किया, सदा-सदा के लिए अपने मानस के अन्तर्लोक में कैद कर लिया।

देवाधिदेव हिमालय के मनमोहक राजकुमार कंचनजंघा के भव्य आकर्षण के अतिरिक्त दार्जिलिंग की दिव्य पहचान है छुक-छुक करती सानो रेल तथा काले साँपों की तरह बलखाती नीचे की सड़कें। सम्पूर्ण विश्व में सर्वाधिक ऊँचाई पर अवस्थित रेलवे स्टेशन 'घूम' यहीं विद्यमान है। पर्यटकों को मोहित करने के लिए निर्मल कल-कल मचलती तिस्ता नदी का नौकायन, देश-विदेश के फैशनों की सामग्रियों से सजी-धजी लहराती पंक्तियों में शोभती मालरोड की दुकानें, जड़ी-बूटियों का अम्बार, गरम-गरम पकौड़ियों,







जलेबियों और चाय का लुत्फ अविस्मरणीय है।

दार्जिलिंग शहर चार उपमण्डलों में विभक्त है– कर्सियांग, कलिंपोङ्, सिलीगुड़ी एवं दार्जिलिंग। कर्सियांग में अच्छे शिक्षा-संस्थानों के साथ-साथ कई मनभावन पर्यटन-स्थल भी हैं। डावहिल का डियर पार्क और स्कूल, वन-विभाग का संग्रहालय, चाय के हरे-भरे बागान एवं टी.वी. टावर दर्शनीय हैं। इस टावर से आपको शहर को देखने का एक अलग ही आनन्द मिलेगा। यहीं पर नेताजी सुभाष चन्द्र बोस अपने अज्ञातवास के दौरान कुछ समय ठहरे थे। तेनजिंग के अनुरोध पर निर्मित हिमालय पर्वतारोहण संस्थान तथा पद्मजा नायडू जूलोजिकल पार्क भी विख्यात है। यहीं गोरखा रंगमंच तथा जापानी बौद्ध विहार एवं बतासिया लूप नामक फ़िल्म शूटिंग-स्थल भी है। स्वामी विवेकानन्द की शिष्या सुश्री भगिनी निवेदिता की समाधि यहाँ दिव्य प्रभाव छोड़ती है।

कलिमपोङ एक वैभवशाली नगर है। यहाँ कलिम नाम का पेड़ बहुतायत से पाया जाता है। आर्किड की सैकड़ों प्रजातियाँ एवं कैक्टस यहाँ का मुख्य आकर्षण है। यहाँ से कुछ किलोमीटर दूर मिरिक की झीलों में नौकायन का उन्माद तथा झील के ऊपर बने पुल पर टहलना अपने में एक सुखद अनुभव है। लगभग 4 हज़ार फीट की ऊँचाई पर स्थित यह शहर अपनी चमकीली धूप के कारण पहाड़ी अंचलों में अद्वितीय है। यहाँ के हस्तशिल्प, गुंबा, दूरबीनदाड़ा, सीढ़ीनुमा खेत एवं मनमोहक बाग विख्यात हैं। सिलीगुड़ी दार्जिलिंग का आधार स्टेशन है। इस अंतिम पड़ाव में आप 'हांगकांग मार्केट' के लोभ का संवरण नहीं कर पाएँगे। यहाँ सभी प्रकार के सामान मिलते हैं। वस्तुतः दार्जिलिंग का विलक्षण प्रभाव मन पर चिरस्थायी छाप छोड़ जाता है।



जरा याद करो कुरबानी

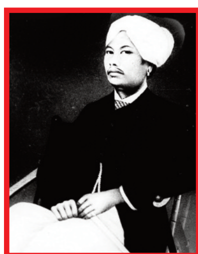


■ गुंजन अग्रवाल

इतिहास के पन्ने सिकन्दर, मुहम्मद गजनवी, मुहम्मद गोरी, इब्राहीम लोदी, बाबर, अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेब, लॉर्ड क्लाइव, लॉर्ड डलहौजी, लॉर्ड कर्जन, लॉर्ड माउंटबेटन आदि नामों से और उनकी कहानियों और बढ़-चढ़कर प्रशंसाओं से भरे पड़े हैं। लेकिन देश के लिए मर मिटनेवाले शहीदों या देश के निर्माण में जान लगा देनेवालों को इतिहास में योग्य स्थान नहीं मिला। पूर्वोत्तर के असंख्य बलिदानी वीरों, संत-महापुरुषों, समाज सुधारकों के साथ जो उपेक्षा की गई, वह एक अक्षम्य अपराध ही कहा जाना चाहिए। पुंजाभील, तलक्कल चन्दु, जादोनांग और जहराभगत-जैसे अनेक लोगों ने वन में रहते हुए देशहित में अपने प्राणों की आहुति दी और देश का मान बढ़ाया। लेकिन हमने उन्हें याद तक नहीं किया।



भोगेश्वरी फुकनानी का जन्म 1885 में असम के नगाँव ज़िले में बरहामपुर इलाके में हुआ भोगेश्वरी एक विवाहित स्त्री और बच्चों की माँ होने के बावजूद अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध महिला-संगठन में बढ़-चढ़कर भाग लेती थीं। 1930 में सत्याग्रह में भाग लेकर गिरफ़्तार हुईं। 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान अंगेज़ों ने 5 लोगों को मार दिया। स्थानीय लोगों ने उन्हें शहीद घोषित कर विजय दिवस मनाते हुए बरहामपुर शहर के कॉंग्रेस कार्यालय को मुक्त करवा दिया। बदले की भावना से अंग्रेज़ों ने कैप्टन फिनिश के नेतृत्व में सेना भेजी। देखते-देखते अंग्रेज़ और देशभक्तों के बीच जंग छिड़ गयी। कैप्टन फिनिश को रिवाल्वर तानते देख भोगेश्वरी उस ओर दौड़ पड़ी और झण्डे के डंडे से उसके सिर पर मारा। क्रोधित होकर फिनिश ने भोगेश्वरी पर गोली चलायी। घायल भोगेश्वरी फुकनानी ने तीन दिन बाद दम तोड़ दिया।



मणिपुर के **राजा वीर टिकेन्द्र जीत सिंह** एक सच्चे देशभक्त थे। मणिपुर का सिंह कहलाते थे। निर्भीकता से अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध संघर्ष किया। 1891 में उनकी सेना और अंग्रेजों के बीच की लड़ाई 'आंग्ल-मणिपुर युद्ध' के नाम से जानी जाती है। 1886 में मणिपुर के महराज चन्द्र कीर्ति सिंह की मृत्यु के बाद शूरचन्द्र सिंह उनका उत्तराधिकारी बना। लेकिन सिंहासन की लड़ाई में ही भाई-कुलचन्द्र सिंह और टिकेन्द्र जीत सिंह के हाथों हारकर काछार की ओर पलायन कर लिया। कुलचन्द्र सिंह गद्दी पर बैठे और टिकेन्द्रजीत सिंह उनके सेनापति बने। इस बीच शूरचन्द्रसिंह ने वापस गद्दी हासिल करने हेतु अंग्रेज़ों से सहायता मांगी। ब्रिटिश ने महाराजा कुलचन्द्र सिंह को मान्यता देने, मणिपुर पर सैनिक आक्रमण कर टिकेन्द्रजीत को सजा देने की कूटनीति तैयार की। ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड लैंसडाउन के आदेश पर असम के मुख्य आयुक्त जे.डब्ल्यू. क्विन्टन 1891 में मणिपुर पहुँचा और महाराजा कुलचन्द्र सिंह से टिकेन्द्रजीत सिंह को सौंपने को कहा। मणिपुरी सेना टिकेन्द्र जीत सिंह के नेतृत्व में अंग्रेज़ी सेना से भिड़ गयी। युद्ध में मणिपुरी सेना ने क्विंटन, ग्रिमनुड़ सहित पाँच अंग्रेज़ अधिकारियों को मार गिराया। 31 मार्च, 1891 को अंग्रेज़ सरकार ने सिलचर, कोहिमा और तमु से सेना की तीन अलग-अलग टुकड़ियाँ युद्ध करने हेतु मणिपुर भेज दीं। टिकेन्द्र जीत सिंह के नेतृत्व में मणिपुरी सेना ने संघर्ष किया। अंततः मणिपुर के राजमहल पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा हो गया। टिकेन्द्र जीत सिंह और उनके सेनानी भूमिगत हो गये। 23 मई, 1891 को टिकेन्द्र जीत पकड़े गये और 13 अगस्त, 1891 को उनको और उनके प्रमुख सहयोगी थंगाल जनरल को फाँसी दे दी गयी।



कनकलता बरुआ ने असम के विश्वनाथ ज़िले के बोरगाबाड़ी गाँव में जन्म लिया जो जोगोहपुर के निकट है। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के समय कनकलता गोहपुर उप-मण्डल में गठित युवाओं की 'मृत्युवाहिनी' में शामिल हुई। 20 सितम्बर, 1942 को वाहिनी ने तय किया कि पुलिस थाने पर तिरंगा फहराया जाय। निहत्थे ग्रामीणों के दल का नेतृत्व करती कनकलता थाने की ओर बढ़ी। पुलिस की चेतावनी को अनसुनी कर वह आगे बढ़ती गयी। पुलिस ने गोली चलाई, कनकलता गिर पड़ी और गिरते राष्ट्रीय ध्वज को मुकुन्द काकोटी ने थाम लिया। बाद में काकोटी भी गिर पड़ा। पुलिस थाने में दोनों मारे गए। उस समय कनकलता की आयु सिर्फ 17 वर्ष थी।

पसाल्या खुआङ्चेरा मिजोरम के पहला स्वतंत्रता सेनानी थे। 1890 में जब अंग्रेज़ों ने लुशाई हिल्स पर आक्रमण किया, तब खुआङ्चेरा ने अपनी वीरता और पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए अंग्रेज़ों से भीषण युद्ध किया और वीरगति प्राप्त की। साहस, शक्ति

और सच्चाई के लिए जीने-मरनेवाले अप्रतिम वीर थे– खुआङ्चेरा।



कुशल कोंवर गाँधीवादी थे जो अहिंसा के पथ पर चलते था। नादान कुशल पर अंग्रेज़ों ने झूठे आरोप लगाये। 10 अक्तूबर 1942 को ब्रिटिश सैनिकों को ले जाती एक रेलगाड़ी सरुपथर स्टेशन पर पटरी से उतर गई। इसमें कई सैनिक मारे गए। कुशल कोवर असम के गोलाघाट का रहने वाला था। इस हादसे में उसे फँसाकर आरोपी बनाया और 15 जून 1943 को उसे फाँसी दी गई।



पाओना ब्रजवासी मणिपुर के वीर योद्धा थे। 1891 में थौबाल ज़िले के खोङ्जोम में हुए भीषण संग्राम में पाओना ब्रजवासी के नेतृत्व में मणिपुरी सेना ने अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ा दिए थे। इतिहास में इसे एक घमासान युद्ध के रूप में वर्णन किया गया। शहीद ब्रजवासी को आज भी मणिपुर में श्रद्धा से याद किया जाता है।



तिरोत सिंह सियाम एक खासी नेता थे। खासी राज्य के रहनेवाले थे जो आजकल मेघालय कहलाता है। 04 अप्रैल, 1829 को तिरोत सिंह ने अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ युद्ध का ऐलान कर दिया था। खासी हिल्स पर अपना आधिपत्य स्थापित करने आए अंग्रेज़ों को रोका। अंततः शक्तिशाली ब्रिटिश सेना के सामने परास्त होना पड़ा। 17 जुलाई, 1835 को ढाका कारावास में तिरोत सिंह की मृत्यु हुई।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में पूर्वोत्तरवासियों ने भी उतना ही बलिदान किया जितना देश के अन्य भाग के लोगों ने। हमें गर्व है कि हम उनके वंशज हैं।

असम के भक्त-कवि शंकरदेव



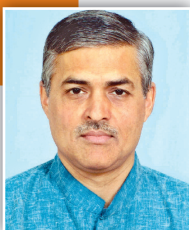
श्रीमंत शंकरदेव असमिया भाषा के अत्यंत प्रसिद्ध कवि, नाटककार तथा हिंदू समाजसुधारक थे। इनका जन्म 26 सितंबर 1449 को असम के नौगाँव जिले की बरदौवा के समीप अलिपुखुरी में हुआ। जन्म के कुछ दिन पश्चात् इनकी माता सत्यसंध्या का निधन हो गया। 21 वर्ष की उम्र में सूर्यवती के साथ इनका विवाह हुआ। मनु कन्या के जन्म के पश्चात् सूर्यवती परलोकगामिनी हुई।

शंकरदेव ने 32 वर्ष की उम्र में विरक्त होकर प्रथम तीर्थयात्रा आरंभ की और उत्तर भारत के समस्त तीर्थों का दर्शन किया। रूप और सनातन गोस्वामी से भी शंकर का साक्षात्कार हुआ था। तीर्थयात्रा से लौटने के पश्चात् शंकरदेव ने 54 वर्ष की उम्र में कालिंदी से विवाह किया। तिरहुतिया ब्राह्मण जगदीश मिश्र ने बरदौवा जाकर शंकरदेव को भागवत सुनाई तथा यह ग्रंथ उन्हें भेंट किया। शंकरदेव ने जगदीश मिश्र के स्वागतार्थ 'महानाट' के अभिनय का आयोजन किया। इसके पूर्व 'चिह्लयात्रा' की प्रशंसा हो चुकी थी। शंकरदेव ने 1438 शक में भुइयाँ राज्य का त्याग कर अहोम राज्य में प्रवेश किया। कर्मकांडी विप्रों ने शंकरदेव के भक्ति प्रचार का घोर विरोध किया। दिहिगिया राजा से ब्राह्मणों ने प्रार्थना की कि शंकर वेदविरुद्ध मत का प्रचार कर रहा है। कतिपय प्रश्नोत्तर के पश्चात् राजा ने इन्हें निर्दोष घोषित किया। हाथीधरा कांड के पश्चात् शंकरदेव ने अहोम राज्य को भी छोड़ दिया। पाटवाउसी में 18 वर्ष निवास करके इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की। 67 वर्ष की अवस्था में इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की। 97 वर्ष की अवस्था में इन्होंने दूसरी बार तीर्थयात्रा आरंभ की। उन्होंने कबीर के मठ का दर्शन किया तथा अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। इस यात्रा के पश्चात् वे बरपेटा वापस चले आए। कोच राजा नरनारायण ने शंकरदेव को आमंत्रित किया। कूचबिहार में 1490 शक में वे वैकुंठगामी हुए। शंकरदेव के वैष्णव संप्रदाय का मत एक शरण है। इस धर्म में मूर्तिपूजा की प्रधानता नहीं है। धार्मिक उत्सवों के समय केवल एक पवित्र ग्रंथ चौकी पर रख दिया जाता है, इसे ही नैवेद्य तथा भक्ति निवेदित की जाती है। इस संप्रदाय में दीक्षा की व्यवस्था नहीं है।

रचनाएँ

- मार्कण्डेयपुराण के आधार पर शंकरदेव ने 615 छंदों का हरिश्चंद्र उपाख्यान लिखा।
- भक्तिप्रदीप में भक्तिपरक 308 छंद हैं। इसकी रचना का आधार गरुड़पुराण है।
- हरिवंश तथा भागवतपुराण की मिश्रित कथा के सहारे इन्होंने रुक्मिणीहरण काव्य की रचना की।
- शंकरत कीर्तनघोषा में ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण तथा भागवतपुराण के विविध प्रसंगों का वर्णन है।
- वामनपुराण तथा भागवत के प्रसंगों द्वारा अनादिपतनम् की रचना हुई।
- अंजामिलोपाख्यान 426 छंदों की रचना है।
- अमृतमंथन तथा बलिछलन का निर्माण अष्टम स्कंध की दो कथाओं से हुआ है।
- आदिदशम कवि की अत्यंत लोकप्रिय रचना है जिसें कृष्ण की बाललीला के विविध प्रसंग चित्रित हुए हैं।
- कुरुक्षेत्र तथा निमिमनसिद्धसंवाद और गुणमाला उनकी अन्य रचनाएँ हैं।
- उत्तरकांड रामायण का छंदोबद्ध अनुवाद उन्होंने किया।
- विप्रपत्नीप्रसाद, कालिदमनयात्रा, केलिगोपाल, रुक्मिणीहरणनाटक, पारिजातहरण, रामविजय आदि नाटकों का निर्माण शंकरदेव ने किया।
- असमिया वैष्णवों के पवित्र ग्रंथ भक्तिरत्नाकर की रचना इन्होंने संस्कृत में की। इसमें संप्रदाय के धार्मिक सिद्धांतों का निरूपण हुआ है।

नागालैण्ड की रानी माँ गाइडिन्ल्यू



■ विजय कुमार
लेखक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक हैं

देश की स्वतन्त्रता के लिए जेल में सहर्ष भीषण यातनाएँ भोगनेवाली नागालैण्ड की रानी माँ गाइडिन्ल्यू का जन्म 26 जनवरी, 1915 को नागाओं की रांगमेयी जनजाति में हुआ था। केवल 13 वर्ष की अवस्था में ही वह अपने चचेरे भाई जादोनांग से प्रभावित हो गयीं। जादोनांग प्रथम विश्वयुद्ध में लड़ चुके थे। युद्ध के बाद अपने गाँव आकर उन्होंने तीन नागा कबीलों– जेमी, ल्यांगमेयी और रांगमेयी में एकता स्थापित करने हेतु 'हराका' पंथ की स्थापना की। आगे चलकर ये तीनों सामूहिक रूप से 'जेलियांगरांग' कहलाये। इसके बाद वे अपने क्षेत्र से अंग्रेज़ों को भगाने के प्रयास में लग गये।

इससे अंग्रेज़ नाराज़ हो गये। उन्होंने जादोनांग को 29 अगस्त, 1931 को फाँसी दे दी; पर नागाओं ने गाइडिन्ल्यू के नेतृत्व में संघर्ष जारी रखा। अंग्रेज़ों ने आन्दोलनरत गाँवों पर सामूहिक जुर्माना लगाकर उनकी बन्दूकें रखवा लीं। 17-वर्षीय गाइडिन्ल्यू ने इसका विरोध किया। वह अपनी नागा-संस्कृति को सुरक्षित रखना चाहती थीं। हराका का अर्थ भी शुद्ध एवं पवित्र है। उनके साहस एवं नेतृत्व-क्षमता को देखकर लोग उन्हें देवी मानने लगे।

अब अंग्रेज़ गाइडिन्ल्यू के पीछे पड़ गये। उन्होंने उनके प्रभाव-क्षेत्र के गाँवों में उनके चित्रवाले पोस्टर दीवारों पर चिपकाये तथा उन्हें पकड़वानेवाले को 500 रु. पुरस्कार देने की घोषणा की; पर कोई इस लालच में नहीं आया। अब गाइडिन्ल्यू का प्रभाव उत्तरी मणिपुर, खोनोमा तथा कोहिमा तक फैल गया। नागाओं के अन्य कबीले भी उन्हें अपना नेता मानने लगे।

सन् 1932 में गाइडिन्ल्यू ने पोलोमी गाँव में एक विशाल काष्ठदुर्ग का निर्माण शुरू किया, जिसमें 40,000 योद्धा रह सकें। उन्होंने अंग्रेज़ों के विरुद्ध संघर्ष कर रहे अन्य जनजातीय नेताओं से भी सम्पर्क बढ़ाया। गाइडिन्ल्यू ने अपना खुफिया तन्त्र भी स्थापित कर लिया। इससे उनकी शक्ति बहुत बढ़ गयी। यह देखकर अंग्रेज़ों ने डिप्टी कमिश्नर जे.पी. मिल्स को उन्हें पकड़ने की ज़िम्मेदारी दी। उसने अपना खुफिया तंत्र फैलाया और 17 अक्तूबर, 1932 को अचानक गाइडिन्ल्यू के शिविर पर हमला कर उन्हें पकड़ लिया।



गाइडिन्ल्यू को पहले कोहिमा और फिर इम्फाल लाकर मुक़दमा चलाया गया। उन पर राजद्रोह के भीषण आरोप लगाकर 14 साल के लिए जेल के सींखचों के पीछे भेज दिया गया। 1937 में जब पंडित नेहरू असम के प्रवास पर आये, तो उन्होंने गाइडिन्ल्यू को 'नागाओं की रानी' कहकर सम्बोधित किया। तब से यही उनकी उपाधि बन गयी। अपने क्षेत्र के उत्थान को समर्पित रानी माँ ने आज़ादी के बाद राजनीति के बदले समाजसेवा के मार्ग को चुना।

सन् 1958 में कुछ नागा-संगठनों ने विदेशी मिशनरियों की शह पर नागालैण्ड को भारत से अलग करने का हिंसक आन्दोलन चलाया। रानी माँ को भारत प्राणों से भी प्यारा था। अतः उन्होंने आंदोलन का प्रबल विरोध किया। इस पर वे उनकी जान के दुश्मन हो गये। इस कारण रानी माँ को छह साल तक भूमिगत रहना पड़ा। इसके बाद भी वे शान्ति के प्रयास में लगी रहीं।

सन् 1972 में भारत सरकार ने उन्हें 'ताम्रपत्र' और फिर 'पद्मभूषण' देकर सम्मानित किया। वे अपने क्षेत्र के ईसाइकरण की विरोधी थीं। अतः वे 'वनवासी कल्याण आश्रम' और 'विश्व हिंदू परिषद्' के अनेक सम्मेलनों में गयीं। आजीवन अविवाहित रहकर नागा जाति, हिंदू-धर्म और देश की सेवा करनेवाली रानी माँ गाइडिन्ल्यू ने 17 फरवरी, 1993 को यह शरीर छोड़ दिया।

उक्यांग नागवा
मेघालय का जयंतिया वीर

■ विपिन बिहारी पाराशर

उक्यांग नागवा मेघालय का एक वीर क्रांतिकारी युवक था। 18वीं शती में मेघालय की पर्वतमालाओं में ब्रिटिश शासन नहीं था बल्कि इसके 3,500 वर्गमील में खासी और जयंतिया जनजातियाँ स्वतंत्र रूप से रहती थीं। इस क्षेत्र में आज के बांग्लादेश और सिल्चर के 30 छोटे-छोटे राज्य थे, जो आपस में तालमेल रखते थे। उन 30 राज्यों में एक राज्य था जयंतियापुर। उसकी एक मंत्रिपरिषद् थी। उवींरेन्द्र का ज्येष्ठ पुत्र उस समय जयंतिया समाज का राजा था, लेकिन ब्रिटिश शासन ने आक्रमण करके उसके दो भाग कर दिए-एक समतल क्षेत्र दूसरा पर्वतीय।

सन् 1835 में जब अंग्रेज़ों ने जयंतियापुर पर आक्रमण किया, तब जयंतिया वीरों ने उनका जमकर मुकाबला किया, लेकिन अंग्रेज़ों की चाल के कारण वे परास्त हो गए। ऐसी स्थिति में जयंतिया मंत्रिमण्डल की इच्छा थी कि राजा पर्वतीय क्षेत्र में चले जाएँ, किन्तु राजा ने अंग्रेज़ सरकार से संधि कर ली, जिसे मंत्रिमण्डल ने स्वीकार नहीं किया। इस पराजय के बाद उक्यांग को जयंतिया समाज का नेता चुना गया।

उक्यांग शक्तिशाली एवं बलिष्ठ था। उसे बाँसुरी से बहुत प्रेम था। जब जयंतियापुर के मैदानी क्षेत्र में अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया, तब उन्होंने पर्वतमालाओं के ऊपर अंग्रेज़ी सत्ता का शासन स्थापित करने के लिए जोनाई की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। जोनाई राज्य में जब अंग्रेज़ हार गए, तब उन्होंने कूटनीति से लोगों को ईसाई बनाना शुरू कर दिया। इस पर उक्यांग नागवा ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

अंग्रेज़ों ने 1860 में 2 रुपए प्रतिवर्ष गृह-कर लगाया था जिसका अनेक स्थानों पर जयंतिया समाज ने विरोध किया। ऐसे समय में उक्यांग नागवा जनता से बंसी की धुन में कहता था, 'वीर जवानो उठो! जाग्रत हो जाओ और जयंतिया समाज के लोगो अपने भोलेपन को त्यागकर अपने धनुष-बाण, तलवार युद्ध करने के लिए उठा लो।' उक्यांग द्वारा बंसी के माध्यम से किया जा रहा जनजागरण अंग्रेज़ों की समझ नहीं आ सका। पर उसके कारण पूरा जयंतिया समाज उठ खड़ा हुआ और उसने अंग्रेज़ों को चुनौती देनी शुरू कर दी। तब अंग्रेज़ों ने सबक सिखने के लिए लेवी-कर अदा करने का सम्मन जारी किया। 'हम अंग्रेज़ी सरकार को कोई कर नहीं देंगे'– उक्यांग ने घोषणा कर दी। तब जोनाई के भोले-भाले समाज को अंग्रेज़ी सरकार का अत्याचार सहना पड़ा। अंग्रेज़ों ने जयंतिया समाज के लोगों को जेलों में भर दिया, लेकिन उक्यांग नागवा उनके हाथ नहीं लगा। उसने धीरे-धीरे एक सेना गठित की और न केवल जोनाई, बल्कि 7 स्थानों पर योजनाबद्ध ढंग से आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। अंग्रेज़ उसकी गुरिल्ला युद्धविद्या देखकर अचंभित रह गए और उसका लोहा मानने लगे। अब अंग्रेज़ सरकार उक्यांग नागवा से बहुत भयभीत हो गयी। उक्यांग नागवा के नेतृत्व में जयंतियापुर के सैनिकों ने 20 माह तक युद्ध किया। अंग्रेज़ हारते रहे तो उन्होंने उक्यांग नागवा को ही गिरफ़्तार करने की योजना बनायी। नागवा का एक प्रमुख साथी दुर्भाग्य से अंग्रेज़ी सत्ता के प्रभाव में आकर उनसे मिल गया। उधर उक्यांग युद्ध में लगे जख़्मों के कारण अस्वस्थ हो गया था। फिर भी अपने साथियों के साथ डटा रहा। अंतिम युद्ध में उक्यांग नागवा के वीर सैनिक घायल अवस्था में इसको उठाकर ले गए और मुंशी गाँव में सुरक्षित रखा। लेकिन धोखा देकर गुप्तचर उदोलोई तेरकर ने ब्रिटिश साइमन को इसकी सूचना भेज दी। अब साइमन के ब्रिटिश सैनिकों ने आनन-फानन में मुंशी ग्राम को चारों ओर से घेर लिया। अपने नेता की अनुपस्थिति में जयंतिया वीरों ने युद्ध किया किन्तु अंग्रेज़ों के आगे नहीं टिक सके। आख़िरकार बीमार उक्यांग को गिरफ़्तार कर लिया गया। पर जनता और सैनिकों ने आत्मसमर्पण न कर बलिदान देना ही श्रेयस्कर समझा। साइमन ने उक्यांग के समक्ष शर्त रखी कि यदि तुम्हारे सैनिक आत्मसमर्पण करेंगे तो तुमको मुक्ति मिल जाएगी। पर उक्यांग ने वह सन्धि-पत्र फाड़कर फेंक दिया। अब उस पर अमानीय अत्याचार होने लगे। लेकिन अंग्रेज़ सरकार किसी भी प्रकार से उसे संधि के लिए विवश न कर सकी। अंत में उक्यांग नागवा को कार्बी-आंग्लांग ज़िले के पास जोनाई नामक स्थान पर सार्वजनिक रूप से 30 दिसम्बर, 1862 को फाँसी दे दी गयी।



उत्तर-पूर्व के दो अनमोल रतन

सचिन देव बर्मन का जन्म त्रिपुरा के एक शाही परिवार में हुआ। शाही परिवार में जन्म लेने के बाद भी संगीत उनके हृदय में इस तरह बसा था कि वह धीरे-धीरे पढ़ाई के क्रम में ही संगीत की जादुई दुनिया में कदम बढ़ाते चले गये।



■ निर्मल अगस्त्य
लेखक जाने-माने संगीत-निर्देशक हैं

जब किसी की प्रतिभा सामान्य मापदण्डों से ऊपर उठ जाती है, तब वह व्यक्ति अद्वितीय होने की राह पर निकल पड़ता है। समूचे विश्व में ऐसे कई कलाकार हुए हैं जो छोटे शहरों, कस्बों और गाँवों में पैदा हुए, लेकिन अपनी लगन और मेहनत के बल पर उन्होंने पूरी दुनिया में नाम कमाया। संगीत की दुनिया में ऐसी कई विभूतियाँ हैं जिन्होंने संगीत की दुनिया को एक नयी पहचान दी। भारतीय संगीत के जड़ें बहुत गहरी हैं और यहाँ संभवतः सबसे अधिक प्रकार के संगीत गाए-बजाए जाते रहे हैं। लेकिन विगत अस्सी सालों में एक नये तरह का संगीत सर्वाधिक प्रचलित हुआ जिसे फ़िल्म संगीत या सिनेमाई संगीत कहते हैं। भारतीय फ़िल्म जगत् में बहुत-से ऐसे संगीतज्ञ हुए जिन्होंने आम श्रोता के हृदय को अपने संगीत से आनन्दित किया। फ़िल्म में मुख्यतः पार्श्वगायन अथवा प्लेबैक संगीत सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ क्योंकि इसमें तकनीक और व्याकरण की पृष्ठभूमि में भाव को प्रधानता दी गयी। पार्श्वगायन में गायक का उद्देश्य अपने लिए गाना नहीं होता बल्कि उसे उस व्यक्ति के लिए गाना होता है जिसे परदे पर दिखाया जा रहा है। यह एक जटिल बात थी जैसे परकाया प्रवेश। इन गानों को संगीतकार सुरबद्ध करते थे और संगीत-संयोजकों और वाद्ययन्त्र-कलाकारों की मदद से सजाते थे। इन्हीं संगीतकारों में एक नाम था सचिन देव बर्मन (एस.डी. बर्मन) का।

सचिन देव बर्मन का जन्म त्रिपुरा के एक शाही परिवार में हुआ। शाही परिवार में जन्म लेने के बाद भी संगीत उनके हृदय में इस तरह बसा था कि वह धीरे-धीरे पढ़ाई के क्रम में ही संगीत की जादुई दुनिया में कदम बढ़ाते चले गये। शुरूआत में वह गायिकी से जुड़े और कलकत्ता में कई जगहों पर अपने गायन की प्रस्तुति दी, लेकिन दुनिया को पता नहीं था कि उनके अन्दर एक विलक्षण संगीतकार भी छुपा हुआ है। समय के साथ यह पन्ना भी खुला जब उन्होंने बांग्ला-नाटकों में संगीत देना शुरू किया। सन 1937 में उन्हें पहली बार बांग्ला-फ़िल्म में संगीत देने का अवसर मिला और उनकी दूसरी बांग्ला-फ़िल्म 'राजकुमारेर निर्वासन' के संगीत ने बड़ी प्रसिद्धि पायी। यह सिलसिला 1944 तक चला, लेकिन उनकी यात्रा तो जैसे शुरू ही हुई थी। उनके संगीत के कई ऐसे रंग थे जिनका साक्षात्कार बंगाल के बाहर के लोगों से भी होना था। 1946 में वह बम्बई चले गये। पहली कुछ फ़िल्मों में उन्हें कुछ ख़ास सफलता नहीं मिली, लेकिन 1947 में 'दो भाई' फ़िल्म के गीत– 'मेरा सुन्दर सपना बीत गया' को अच्छी शुरूआत मिली। इसके बाद फ़िल्म 'शबनम' का एक गीत– 'ये दुनिया रूप की चोर' भी बहुत लोकप्रिय हुआ। उनकी यात्रा का सबसे अहम हिस्सा 'नवकेतन फ़िल्म्स' था जहाँ से उन्हें उड़ान मिली। 'अफ़सर' और 'बाज़ी' नवकेतन फ़िल्म्स के साथ उनकी पहली दो फ़िल्में थीं। 'बाज़ी' फिल्म के गीत– 'तदबीर से बिगड़ी हुई तक़दीर बना ले' ने श्रोताओं बीच विशेष जगह पायी



जिसमें चले आ रहे भारतीय संगीत-संयोजन से हटकर 'ब्लूज़ संगीत' का रंग चढ़ा था। इसके बाद 'टैक्सी ड्राइवर', 'नौ दो ग्यारह', 'कालापानी', 'मुनीम जी' और 'पेईंग गेस्ट' के गानों ने उन्हें आज के मुम्बई और उस समय के बम्बई का स्थापित संगीतकार बना दिया। उन्होंने गुरुदत्त की दो ऐसी फ़िल्मों में संगीत दिया जो मील के पत्थर साबित हुआ। ये फ़िल्में थीं– 'प्यासा' और 'काग़ज़ के फूल' जिनके गाने आज भी लोग बड़े चाव से सुनते हैं। 1955 में बनी 'देवदास' का संगीत भी उन्होंने ही दिया था। इसके साथ-साथ 'हाउस नम्बर 44', 'फन्टूश', 'सोलहवाँ साल' में भी उन्होंने अपने संगीत का जादू बिखेरा। एक गीत – 'जलते हैं जिसके लिए', जो रॉय की सुजाता फ़िल्म थी, ने संगीत जगत् में अपनी मधुरता की अमिट छाप छोड़ी। इसके साथ-साथ एक गायक के रूप में भी अपनी अनोखी आवाज़ के कारण उन्होंने अपनी अलग





पहचान बनायी। 'मेरे साजन हैं उस पार' (बन्दिनी) - 1963, 'वहाँ कौन है तेरा' (गाइड) - 1965-जैसे गीतों ने गम्भीर पार्श्वगायन में एक नया पन्ना जोड़ा। एक सुकून, एक तरह का प्रवाह और इन दोनों के बीच सचिन देव बर्मन की लोकशैली से ओतप्रोत आवाज़ ने श्रोताओं को दीवाना बनाया। फ़िल्म 'आराधना' -1969 के गीत - 'सफल होगी तेरी आराधना' के लिए उन्हें सर्वोत्तम पार्श्वगायक का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला।

इसके अलावा नवकेतन फ़िल्मस के साथ दूसरी पारी में उनके संगीत ने अपना करिश्मा बरक़रार रखा और उन्होंने 'बम्बई का बाबू', 'तेरे घर के सामने', 'तीन देवियाँ', 'ज्वेल थीफ', 'मेरी सूरत तेरी आँखें'-जैसी फ़िल्मों में अमर संगीत दिया। कहा जाता है कि 1969 में बनी 'आराधना' के संगीत ने किशोर कुमार को ऐसी पहचान दी कि उन्हें ठीक से आराम करने का समय भी नहीं मिलता था। एक तरह से कहा जाए तो फ़िल्म 'आराधना' से उनके संगीत ने नवीनता के उस द्वार को खोला जिसमें उनके पुत्र आर. डी. बर्मन ने सबसे पहले प्रवेश किया। 1969 में आये 'प्रेम पुजारी' का संगीत आज भी लोग बड़ी तन्मयता से सुनते हैं।

सत्तर के दशक में उन्होंने 'तेरे मेरे सपने', 'शर्मीली', 'अभिमान', 'प्रेम नगर', 'चुपके-चुपके' और 'मिली'-जैसी भावनाप्रधान फ़िल्मों में ऐसा संगीत दिया कि उन फ़िल्मों को 'म्यूजिकल ब्लॉकबस्टर' का नाम मिला। अपने जीवनकाल में बांग्ला और हिंदी को मिलाकर उन्होंने लगभग 100 फ़िल्मों में संगीत दिया जिसमें से अधिकांश आज भी सुने जाते हैं। 1934 में पहली बार उन्हें बंगाल ऑल इण्डिया म्यूजिक कॉन्फ्रेंस में स्वर्णपदक से सम्मानित किया गया। 1958 में उन्हें संगीत नाटक अकेडमी और एशिया फ़िल्म सोसाइटी सम्मान मिला। दो बार उन्हें राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार से सम्मानित किया गया, एक 'आराधना' में बतौर गायक और दूसरा 'ज़िन्दगी-ज़िन्दगी' में बतौर संगीतकार। फिर 1969 में उन्हें 'पद्मश्री' से सम्मानित किया गया। 'टैक्सी ड्राईवर' और 'अभिमान' के लिए उन्हें फ़िल्मफेयर पुरस्कार भी मिला। पाँच बार उन्हें बंगाल फ़िल्म जर्नलिस्ट अवार्ड भी मिला।

ऐसे महान् कलाकार पुरस्कारों की संख्या से पर होते हैं। उनका सबसे बड़ा पुरस्कार उनके चाहनेवालों का प्यार होता है जो एस.डी. बर्मन साहब को आज भी मिलता है। उनकी संगीत-परम्परा को उनके पुत्र आर.डी. बर्मन ने काफी छोटी उम्र से सम्भालना शुरू किया। सूर्य का पुत्र होकर चमकना बहुत मुश्किल होता है और चिराग तले अँधेरा होता है। जिस तरह एक बड़े वृक्ष के नीचे छोटा पौधा पनपकर वृक्ष नहीं बन पाता, उसी तरह एक महान् कलाकार के पुत्र के सामने सबसे बड़ी चुनौती पहचान की होती है। लोग उसे उन मानदण्डों की नज़र से देखने लगते हैं जो उसके पिता ने स्थापित किया। यह एक बड़ी पीड़ादायक स्थिति होती है जिसमें पिता का नाम और प्रसिद्धि, पुत्र की ही शत्रु बन जाती है। लेकिन कुछ पुत्र ऐसे भी हैं जो पिता के सम्मान में न सिर्फ बढ़ोत्तरी करते हैं बल्कि अपनी भी एक अलग पहचान बनाते हैं और जो दुनिया पुत्र को देख कहती थी कि यह अमुक व्यक्ति का पुत्र है, वही दुनिया पिता को देखकर कहती है कि ये अमुक बच्चे के पिता हैं।

आर.डी. बर्मन उर्फ पंचम ने न सिर्फ़ पिता की विरासत को सम्भाला, बल्कि फ़िल्म जगत् को फ़िल्मी संगीत के एक नये आयाम से परिचित कराया। उन्होंने सबसे हटकर वाद्ययन्त्रों की आवाज़ पर प्रयोग किये और शायद वह पहले भारतीय संगीतकार थे जिन्होंने अपने संगीत-संयोजन में गिटार के अलावा कई इलेक्ट्रॉनिक वाद्ययन्त्रों को पारम्परिक वाद्ययन्त्रों के साथ मिलाकर उपयोग करना शुरू किया। उनकी एक ख़ास पहचान थी कि तबले पर बजनेवाला पैटर्न किसी और तालवाद्य पर बजवाते थे और किसी और तालवाद्य पर बजनेवाले टुकड़े या पैटर्न को टेबल पर बजवाते थे। ऐसा उलट-फेर वह कई साजों के साथ करते थे जिससे एक नये पैटर्न का निर्माण होता था और नये तरह के बोल, नयी तरह की आवाज़ सामने आती थी। हालाँकि उनके अन्दर छुपे रचनाकार की झलक उनके पिता एस.डी. बर्मन को तभी मिल गई थी जब वह लगभग नौ साल के थे। 'सर जो तेरा चकराए' नाम के उस प्रसिद्ध गाने की धुन आर.डी. बर्मन ने तब बनायी जब वह लगभग ग्यारह साल के थे और इस धुन को एस.डी. बर्मन ने गुरुदत्त की फ़िल्म 'प्यासा' में इस्तेमाल किया। लेकिन उनकी पहली धुन थी 'ए मेरी टोपी पलट के आ' जिसे उन्होंने 9 साल की उम्र में बनाया और जिसका इस्तेमाल एस.डी. बर्मन ने 'फन्टूश' नाम की फ़िल्म में किया। इसके बाद उनके अपने पिता के साथ बतौर सहायक संगीतकार काम करने का सफ़र शुरू हुआ। इस दौरान उन्होंने 'चलती का नाम गाड़ी', 'काग़ज़ के फूल', 'तेरे घर के सामने', 'बन्दिनी', 'ज़िद्दी', 'गाइड', 'तीन देवियाँ', और 'सोलहवाँ साल' में अपने पिता के सहायक के रूप में काम किया। बतौर संगीतकार उनका सफ़र जाने-माने कलाकार महमूद की फ़िल्म 'छोटे नवाब' - (1961) से शुरू हुआ।

दुनिया को पता नहीं था कि सचिन देव बर्मन का यह गुणी पुत्र राहुल देव बर्मन वास्तव में रिसर्च एण्ड डेवलपमेन्ट बर्मन के

नाम से जाना जानेवाला है और इसकी शुरूआत उन्होंने अपनी पहली हिट फ़िल्म– 'तीसरी मंज़िल' से की। फ़िल्म जगत् और आम श्रोता उनकी इस फ़िल्म के गानों के दीवाने बन गये। इसके बाद तो जैसे उनके खाते में नयी तरह की आवाज़ों और साजों से भरे गीतों की गिनती बढ़ती चली गयी और साथ-साथ उनकी प्रसिद्धि भी। इस क्रम में उन्होंने 'बहारों के सपने', 'प्यार का मौसम', 'यादों की बारात'-जैसी यादगार फ़िल्में कीं। इसके साथ-साथ अपने पिता के साथ 'ज्वेल थीफ' और 'प्रेम पुजारी' में सहायक संगीतकार का भी काम किया। उनकी प्रसिद्धि सन् 1970 के बाद और बढ़ती गयी और श्रोताओं को 'कटी पतंग', 'दम मारो दम', 'अमर प्रेम', 'बुड्ढा मिल गया', 'सीता और गीता', 'रामपुर का लक्ष्मण', 'मेरे जीवन साथी', 'बॉम्बे टू गोवा', 'अपना देश', 'परिचय', 'आप के कसम', 'शोले', 'आँधी', 'कसमे वादे', 'घर', 'गोलमाल', 'खूबसूरत', 'सत्ते पे सत्ता', 'रॉकी' और 'लव स्टोरी'-जैसी फ़िल्मों के कभी न भूलनेवाले गीत सुनने को मिले। कुछ लोग कहते हैं कि उनकी वज़ह से शायद 'बेस गिटार' नाम के एक साज और 'सिन्थेसाइतजर' नाम के वाद्ययन्त्रों को फ़िल्म संगीत के दुनिया में एक ख़ास जगह मिली। उनको फ़िल्मफेयर पुरस्कार के लिए 18 बार नामांकित किया गया, लेकिन ये पुरस्कार उन्हें तीन बार – 'सनम तेरी कसम', 'मासूम' और '1942 अ लव स्टोरी' के लिए मिले। ऐसे लोगों के बारे में कुछ पन्नों में बता पाना असम्भव है। ऐसे लोग एक व्यक्ति नहीं बल्कि संस्थान की तरह होते हैं जिन्हें आगे आनेवाली पीढ़ी प्रकाश-स्तम्भ की तरह देखती है। यही कारण है कि एक महान् संगीतकार का स्टाइल अब इस्तेमाल में नहीं रहा, लेकिन आर.डी. बर्मन उर्फ रिसर्च एण्ड डेवलपमेन्ट बर्मन का स्टाइल आज भी अपनाया जाता है। उनके स्टाइल को अपनाकर कितने नये संगीतकार प्रसिद्ध हो गए। आर.डी. बर्मन का यह मानना कि आनेवाले समय में ताल और आवाज़ का साम्राज्य होगा, बिलकुल ठीक जान पड़ता है।



1



2



3

विश्वग्राम के एक कार्यक्रम मे मंच पर गजमाला से स्वागत करने पर श्री इन्द्रेश जी ने कहा - ''यह सब करते समय ध्यान रखा करो मैं संघ का प्रचारक भी हूँ''-इन्द्रेश कुमार





1. विदेशी महिला श्री इंद्रेश कुमार को राखी बांधते हुए। वाईएमसीए के महासचिव मणि कुमार भी तस्वीर में मौजूद हैं।
2. माननीय इन्द्रेश कुमार जी व मौलाना सुहेब कासमी असम के दुभरी जिला में मुस्लिम समाज की बड़ी सभा को राष्ट्रवाद की शपथ दिलाते हुए।
3. वाईएमसीए के राष्ट्रीय अध्यक्ष लेबी फिलिप मैथ्यु ईसाई समुदाय कल्याण पर काम के लिए श्री इंद्रेश कुमार जी की प्रशंसा करते हुए।
4. विश्वग्राम के कार्यक्रम में श्री इन्द्रेश जी के साथ विश्वग्राम के राष्ट्रीय सचिव श्री भारत सिंह रावत दांए से तीसरे व अन्य महानुभाव।
5. श्री पल्ला प्रताप नायडू, श्री चेलापती राव, वाईएमसीए निदेशक फर्नांडीज व अन्य। विभिन्न ईसाई संगठनों के प्रतिनिधिमंडल ने श्रीमती नजमा हेपतुल्ला, भारत के अल्पसंख्यक मामलों की पूर्व मंत्री को बधाई दी।
6. क्रिसमस के मौके पर गणमान्य व्यक्तियों में मंच पर उपस्थित हैं : श्री इंद्रेश कुमार, श्री चिन्मयानन्द स्वामी, आर्क बिशप मारकुरिआकोस भारानीकुलानगरा, बिशप जैकब मारबारबानाबास, बिशप ईसाक ओसथाथेओस, सीएनआई महासचिव एल्विन मेस्सी।



साक्षात्कार

खेल संघों में नेताओं की दखल ने

ओलम्पिक में एक स्वर्ण पदक के लिए आस लगाए बैठे एक सौ तीस करोड़ की जनसंख्यावाले देश भारत को रजत और कांस्य पदक से ही संतोष करना पड़ रहा है। प्रशिक्षण और ढाँचागत सुविधाओं के नाम पर करोड़ों रुपये प्रतिवर्ष खर्च करने के बाद भी रियो ओलम्पिक में भारत के एयर राइफल निशानेबाज अभिनव बिन्द्रा चौथे स्थान पर रहे। दस मीटर पुरुष एयर पिस्टल में जीतू राय आठवें स्थान पर, अपूर्वी चन्देला 34वें स्थान पर और तथा अयोनिका पॉल 43वें स्थान पर सिमट गयीं। 25 मीटर एयर पिस्टल में हिना सिद्धू सेमीफाइनल के लिए क्वालीफाई भी नहीं कर सकीं। वह 380 स्कोर मारकर 14वें स्थान पर सिमट गयीं। लेकिन दूसरी तरफ देश में ऐसे निशानेबाज भी हैं जो बिना अच्छे संसाधनों के ओलंपिक में भाग लेनेवाले इन खिलाड़ियों से ज्यादा स्कोर लाकर इनसे बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं। पश्चिमी उत्तरप्रदेश के बागपत जिले में स्थित जौहडी गाँव में 8 से 14 साल के ये निशानेबाज बिना पिस्टल के ही ईंट, गन्ने, लाठी, पानी से भरे जग तथा डमी पिस्टल से ही अभ्यास करके इतिहास रच रहे हैं। इनमें से अधिकतर ऐसे निशानेबाज हैं जिन्होंने एक साल पहले ही निशानेबाजी का अभ्यास शुरू किया है। किन्तु दुर्भाग्य यह है कि इन पर न तो भारतीय खेल प्राधिकरण की नज़र पड़ती है और न ही भारत सरकार का कोई मंत्री, नेता अथवा अफसर इनकी मदद के लिए आगे आता है। यकीन मानिए यदि भारत इन निशानेबाजों को बेहतरीन प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था करे तो ओलम्पिक सहित किसी भी बड़ी प्रतिस्पर्धा में हमें इस प्रकार निराश नहीं होना पड़ेगा। किन्तु प्रश्न यह है कि प्रशिक्षण की व्यवस्था करे कौन? जो अफसर और नेता रियो में सरकारी पैसे पर सैर-सपाटा करने गये, उनमें से किसी को इनकी सुध लेने की फुर्सत नहीं है। आख़िर हमारे खेल तंत्र में ऐसी क्या दीमक लगी है जो असली खेल प्रतिभा को आगे ही नहीं बढ़ने देती। यह जानने के लिए **'दी कोर'** के **संपादक प्रमोद कौशिक** ने उच्च कोटि के निशानेबाज और देश को 42 अन्तरराष्ट्रीय तथा 300 से अधिक राष्ट्रीय स्तर के निशानेबाज देनेवाले आधुनिक गुरु द्रोणाचार्य **डॉ. राजपाल** से बात की। प्रस्तुत हैं बातचीत के मुख्य अंश :



- **इस बार ओलम्पिक में भारतीय निशानेबाज पदक नहीं जीत सके। आपकी राय में कहाँ चूक हो रही?**

जो निशानेबाज ऐसी प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए जाते हैं, उनसे पहले ही इतनी उम्मीदें बांध दी जाती हैं कि वे भारी दबाव में आ जाते हैं। इससे उनके प्रदर्शन पर बुरा असर पड़ता है।

- **दबाव एक विषय है। लेकिन क्या खेल तंत्र में भी कुछ ख़ामियाँ हैं?**

खेल तंत्र में ज़बरदस्त ख़ामी यह है कि जो कोच खिलाड़ियों को राष्ट्रीय से अंतरराष्ट्रीय स्तर तक तैयार करता है, उसे किनारे कर दिया जाता है और खिलाड़ी को उस कोच के हवाले कर दिया जाता है जो खेल फेडरेशन द्वारा थोपा जाता है। जबकि खिलाड़ी की असली नब्ज तो पुराना कोच ही जानता है। यह



खेलों को तबाह कर दिया-डॉ. राजपाल सिंह

पर्सनल कोच को नज़रअंदाज़ करने का दुष्परिणाम भी है।

■ **कोच को थोपने की ज़रूरत क्यों पड़ती है?**

थोपने की ज़रूरत इसलिए पड़ती है क्योंकि यदि निशानेबाज फेडरेशन के कोच को स्वीकार नहीं करता है, तो उसका नाम सूची से हटा दिया जाता है या फिर उसे आगे ही नहीं बढ़ने दिया जाता।

■ **ऐसा क्यों है?**

यह फेडरेशन की दादागिरी है। यह दादागिरी भी इसलिए है क्योंकि भारत सरकार कमज़ोर है।

■ **यह तो फेडरेशन की मनमानी हुई?**

बिल्कुल। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि पूरी फेडरेशन पर नेताओं का कब्ज़ा है। निशानेबाजी के जो कोच अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भेजे जाते हैं, वे सभी 'सर्टिफाइड कोच' नहीं हैं। ऐसे लोगों को अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में खिलाड़ी के साथ भेज दिया जाता है जिन्होंने कभी राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता में भी भाग नहीं लिया होता। उन्हें सिर्फ़ इसलिए कोच बनाकर भेज दिया जाता है क्योंकि वे फेडरेशन अधिकारियों व अफसरों की चमचागिरी करते रहते हैं।

■ **हमारे खेल फेडरेशन्स पर यह भी आरोप है कि उन पर ऐसे नेताओं का कब्ज़ा है जिन्हें खेल के बारे में कुछ नहीं पता होता और खेल की समझ रखनेवाले खिलाड़ियों की वहाँ निर्णय-प्रक्रिया में कोई भूमिका नहीं होती। आपका क्या मानना है?**

नेता तो हैं ही ऐसे। वहाँ जो खिलाड़ी हैं, वे भी नेताओं से कम नहीं हैं। वास्तव में फेडरेशन्स में ऐसे खिलाड़ियों को ही जगह मिलती है जो खेल छोड़कर नेता बन जाते हैं। यह देश का दुर्भाग्य है कि खेल तंत्र में घुसने के लिए एक खिलाड़ी को खेल छोड़कर नेता बनना पड़ता है।

■ **ऐसा क्यों?**

उसे वहाँ टिकना है तो उसे नेता बनना ही पड़ेगा। अन्यथा उसे लात मारकर बाहर कर दिया जाएगा।

> खेल तंत्र में ज़बर्दस्त ख़ामी यह है कि जो कोच खिलाड़ियों को राष्ट्रीय से अंतरराष्ट्रीय स्तर तक तैयार करता है, उसे किनारे कर दिया जाता है और खिलाड़ी को उस कोच के हवाले कर दिया जाता है जो खेल फेडरेशन द्वारा थोपा जाता है। जबकि खिलाड़ी की असली नब्ज तो पुराना कोच ही जानता है। यह पर्सनल कोच को नज़रअंदाज़ करने का दुष्परिणाम भी है।

■ **लेकिन इससे तो खेल का भला नहीं होनेवाला?**

खेल के भले से मतलब किसे है? वहाँ जो लोग बैठे हैं, उन्हें इससे कोई मतलब नहीं है। उनके अपने अलग खेल हैं। मैं भारतीय खेल प्राधिकरण का अवैतनिक कोच हूँ। मैं वर्ल्ड यूनिवर्सिटी कंपीटिशन में गया तो देश को दो गोल्ड मैडल मिले। लेकिन हम जैसे कोच की वहाँ अहमियत नहीं है। हम बिना पैसे के सेवा कर रहे हैं, फिर भी हमारी अहमियत नहीं है। वहाँ अहमियत उनकी है जिन्हें भारी-भरकम राशि का भुगतान किया जाता है और उसमें कुछ हिस्सा वह फेडरेशन के कुछ लोगों को देता है।

■ **यह तो आप गंभीर आरोप लगा रहे हैं?**

यह ऐसी हकीकत है जिसे आप आसानी से सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि यह काम बहुत सफ़ाई से किया जाता है। लेकिन यह बात सभी को पता है।

■ **आपने खेल फेडरेशन्स से नेताओं को बाहर कराने के लिए एक अभियान शुरू किया था, उसका क्या हुआ?**

मुझे नेताओं से कोई आपत्ति नहीं है। मैं चाहता हूँ कि राजनेता भी ऐसा हो जिसे खेल के बारे में कुछ पता हो। नेता ऐसा चाहिए जो सही मायने में देश और समाज के लिए समर्पित हो। जो नेता सिर्फ़ पैसे बनाने के लिए वहाँ जाते हैं, उनके प्रवेश पर वहाँ रोक लगनी चाहिए। ऐसे नेताओं ने ही खेल को गर्त में पहुँचाया है।

■ **पिछली बातों को यदि छोड़ दें, तो देश को खेलों में फिर से खड़ा करने के लिए आज क्या करने की ज़रूरत है?**

इसके लिए सबसे ज़रूरी है गाँव से खेल-प्रतिभाओं को ढूँढ़कर निकाला जाए। उनके लिए आप कुछ मत करिए। बस





इतना सुनिश्चित कर दीजिए कि खेल तंत्र द्वारा किसी भी स्तर पर उनके साथ ज़्यादती न हो। वे ही ओलम्पिक में पदकों की बारिश कर देंगे। जब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खिलाड़ियों के चयन का अवसर आता है, तब नेताओं और अफसरों के बच्चों को वहाँ भर दिया जाता है और गाँव की असली प्रतिभाओं को मौका ही नहीं मिलता। असली प्रतिभा का पत्ता तो वह कोच ही साफ़ कर देता है जो फेडरेशन द्वारा थोपा जाता है। जिस कोच को खिलाड़ी से लगाव ही नहीं है, वह उन्हें क्यों आगे बढ़ाएगा, वह तो अफसरों के बच्चों को आगे बढ़ाएगा जिनसे वह अपने दस काम करवा सकेगा।

- **ओलंपिक और दूसरे महत्त्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में खिलाड़ियों और कोच के अलावा बड़ी संख्या में अफसर और नेता भी जाते हैं। नेताओं और अफसरों की आख़िर वहाँ ज़रूरत क्या होती है?**

ज़रूरत कुछ नहीं होती। लेकिन नेताओं और अफसरों के बगैर फेडरेशन्स चलती ही नहीं। इसीलिए सभी फेडरेशन्स का चेयरमैन नेता को बनाया जाता है। यह सिर्फ इसलिए होता है क्योंकि वह उन्हें प्रोटैक्ट करता है। नेताओं के बजाए यदि नौकरशाहों को फेडरेशन्स की कमान सौंप दी जाए, तो बेहतर परिणाम मिल सकते हैं। मेरा अनुभव है कि नौकरशाह अधिक ज़वाबदेह होते हैं।

- **यदि कमान अच्छे खिलाड़ियों को ही सौंप दी जाए, तो?**

खिलाड़ी को दी जाए तो उनकी भी ज़वाबदेही निर्धारित हो। क्योंकि इस बात का डर रहता है कि वे भी अपने-अपने चहेतों को वहाँ भर सकते हैं। वे भी तो पक्षपात कर सकते हैं। उन पर भी एक अंकुश होना चाहिए।

- **क्या खिलाड़ी के पुराने कोच को भी साथ में भेजना चाहिए?**

बिल्कुल। ज़रूर भेजना चाहिए। असली कोच तो वही होता है। फेडरेशन के कोच का खिलाडी के साथ कोई भावनात्मक लगाव नहीं होता। हिना सिद्धू का पति उसका असली कोच है। यदि उसके साथ ओलम्पिक में उसका पति जाता, तो वह निश्चित रूप से पदक जीतकर आती। हिना ने इसकी मांग भी की थी। लेकिन किसी ने उस पर ग़ौर नहीं किया। आज हमें इस बात पर गंभीरता से विचार करने की ज़रूरत है कि खिलाड़ी के पर्सनल कोच को ही आख़िरी तक भाव दिया जाए।

- **क्या मोदी सरकार आने के बाद कोई सुधार दिखाई देता है?**

अभी तक तो नहीं है। जब तक खेल मंत्रालय की कमान ऐसे ही किसी विज़नरी के हाथ में नहीं होगी जो मोदी की तरह समर्पित हो, तब तक परिवर्तन की उम्मीद नहीं की जा सकती। नये खेल मंत्री ने तो अभी काम संभाला ही है, इसलिए उनके बारे में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता।

- **अभी सरकार ने खेलों का मूल्यांकन करने के लिए एक समिति बनाई है। क्या उससे कुछ उम्मीद है आपको?**

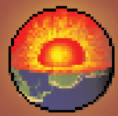
उस कमेटी में भी फेडरेशन्स की चमचागिरि करनेवाले लोग ही होंगे। उनसे आप किसी सुधार की उम्मीद नहीं कर सकते। ज़रूरत इस बात की है प्रतिभा को ढूँढ़नेवाले और उन्हें ईमानदारी से आगे बढ़ानेवाले लोग जब तक वहाँ नहीं होंगे, तब तक कुछ नहीं होगा। मुकेश अंबानी ने गाँव से ढूँढ़कर मुझे रीयल हीरोज़ अवार्ड से सम्मानित किया। उन्होंने हमारे काम को रिकॉगनाइज़ किया, लेकिन सरकार में किसी को हमारा प्रयास आज तक नज़र नहीं आया।

- **आप अंबानी की बात कर रहे हैं। यदि प्रत्येक बड़ा औद्योगिक घराना एक-एक खेल को बढ़ावा देना शुरू कर दे, तो क्या बदलाव आयेगा?**

बदलाव तब आएगा जब पके-पकाए खिलाड़ियों को अडॉप्ट करने के बजाए गाँव से प्रतिभाओं को तलाशकर बढ़ावा दिया जाए। लिंबाराम को गाँव से ढूँढ़कर आगे बढ़ाया गया तो उसने देश को पदक जीतकर दिये।

- **हरियाणा सरकार ने खेल विश्वविद्यालय स्थापित करने की घोषणा की है। क्या इससे परिवर्तन जाएगा?**

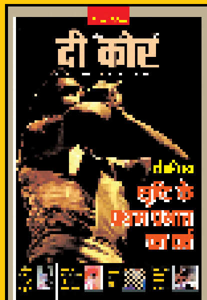
हरियाणा में ही राय स्कूल खेल का बड़ा केन्द्र है। उससे क्या लाभ मिला? खेल-संस्थान खड़ा करने के साथ-साथ उनकी कमान ऐसे लोगों को सौंपी जाए जो ज़वाबदेह हों। हमारे देश में प्रतिभाओं की कमी नहीं है। उन्हें आगे बढ़ानेवाले ही नहीं हैं। हमारे गाँव के एक भट्टा मज़दूर के बेटे रवि जाटव ने अभिनव बिंद्रा से अधिक स्कॉर मारा था। पहले से रईस अभिनव बिन्द्रा को करोड़ों रुपये दिये गये, लेकिन रवि जाटव को कभी किसी ने एक रुपया भी नहीं दिया। इसलिए वह आगे बढ़ने से वंचित रह गया। ऐसी प्रतिभाओं को सहयोग देने की ज़रूरत है। आज देश को चाहिए कि वह चीन की तरह गाँव के स्तर से ही प्रतिभाशाली खिलाड़ियों की एक पूरी टीम लेकर चले और उसे ही अंतरराष्ट्रीय स्तर तक आगे बढ़ाये। इसमें किसी भी स्तर पर नेताओं और अफसरों के अवांछित बच्चों को कभी प्रवेश न दिया जाए।

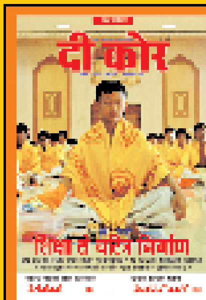


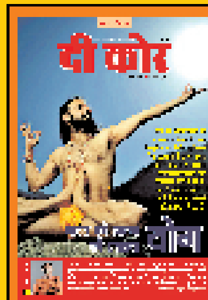
दी कोर

▪ सुरुचि
▪ नैतिक मूल्य
▪ सुलभ आकार

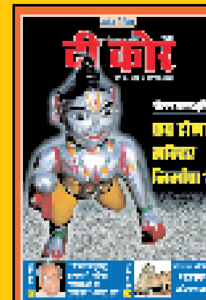
भारत, भारतीयता को समर्पित राष्ट्रीय हिंदी मासिक











धर्म-संस्कृति-अध्यात्म ▪ महान् व्यक्तित्व ▪ सेवा ▪ नारी-जगत् ▪ बाल जगत् ▪ स्वास्थ्य-जागरूकता
भारतीय खेल ▪ पर्यावरण-चेतना ▪ ज्योतिष ▪ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ▪ शिक्षा जगत् ▪ अद्भुत आश्चर्य
पुस्तक-चर्चा ▪ कार्टून ▪ इतिहास-पथ ▪ साक्षात्कार ▪ सौन्दर्य ▪ कविता ▪ परिवार ▪ और बहुत कुछ

सदस्यता-प्रपत्र

फॉर्म नं. ....

मेरी प्रति कुरियर ☐ रजिस्टर्ड डाक ☐ द्वारा इस पते पर प्रेषित की जाए :

नाम ....

पता..

....पिन ☐☐☐☐☐☐

दूरभाष/मोबाइल..

ई-मेल..

3-वर्षीय सदस्यता-शुल्क ₹3100/- ☐ 5-वर्षीय सदस्यता-शुल्क ₹5100/- ☐ 10-वर्षीय सदस्यता-शुल्क ₹11000/- ☐

संलग्न मनिऑर्डर ☐ चेक ☐ डिमाण्ड ड्राफ्ट ☐

चेक/ड्राफ्ट-क्रमांक....................... बैंक का नाम....................... शाखा.................... दिनांक....................

मनिऑर्डर/चेक/ड्राफ्ट 'दी कोर' (The Core) के पक्ष में भेजें :

दी कोर
सी-15, फ्लैटेड फैक्ट्री कॉम्प्लेक्स,
झण्डेवालान, नई दिल्ली-110 055
दूरभाष : 011-45768329, 9899256493, 9654669293
e-mail : editor.thecore@gmail.com

For Online Payment:
Keshav Sahkari Bank Ltd. (IDBI Bank)
IFSC Code: IBKL0413KSB
A/C No.: 1453001400000092

हस्ताक्षर एवं दिनांक

सात सखियों का संगीत

■ निर्मल अगस्त्य

भारत का उत्तर-पूर्व सात राज्यों की कलात्मकता और सृजनशीलता से ऐसे सुशोभित है मानो प्रकृति कला की देवी सरस्वती के साथ यहाँ विराजमान हों। यह समूचा क्षेत्र विभिन्न प्रकार की कलाओं से भरा पड़ा है। हालाँकि ये सभी राज्य एक समूह में हैं, फिर भी इन राज्यों के सांस्कृतिक प्रतिमान अपने-अपने तरीके से प्रखर भी हैं और अलग भी। यद्यपि कहीं-कहीं समानताएँ और प्रभाव भी है, तथापि उनकी अपनी सांस्कृतिक विरासत का रंग कहीं भी धूमिल होता नहीं जान पड़ता है। सिक्किम उस क्षेत्र का आठवाँ राज्य है जो इन सात राज्यों की तरह ही अपने लोकसंगीत के कारण अपनी विशेष पहचान रखता है।

आईये, सबसे पहले भारत के सबसे उत्तर-पूर्व राज्य अरुणाचलप्रदेश के संगीत और नृत्य की चर्चा करते हैं जहाँ सूर्य अपनी किरणों को सबसे पहले बिखेरते हैं। अरुणाचलप्रदेश के संगीत और नृत्य में परी-कथाओं, लोककथाओं, किंवदन्तियों , रीति-रिवाजों और मान्यताओं का सम्प्रेषण होता है। यदि संगीत के साथ नृत्य की बात करें तो ये भी पारम्परिकता से जुड़े होते हैं। कुछ पारम्परिक नृत्यों में परिवार और गाँववालों के उत्थान, अच्छा स्वास्थ्य और प्रसन्नता का वर्णन किया जाता है। कुछ विशेष अवसरों पर कृषि, पशुपालन और अच्छी उपज को इंगित करते संगीत को पारम्परिक नृत्य के साथ गाया-बजाया जाता है। इसके अलावा श्राद्ध से सम्बन्धित संगीत भी यहाँ प्रचलित है। सबसे अलग और अनोखा वह संगीतमय नृत्य है जिसमें स्त्री-पुरुष समागम की विभिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन इस धारणा से किया जाता है कि ऐसा करने से स्त्री और पुरुष की सन्तानोत्पत्ति की क्षमता में कमी नहीं होगी। यहाँ वीररस से भरे शौर्य-गाथाओं को संगीत के माध्यम से व्यक्त करने का प्रचलन है जिसमें ये अपने अतीत की वीरगाथाओं का वर्णन करते हैं। इस संगीत को 'बरई' के नाम से जाना जाता है। किसी खुशी, विवाह या संगीति के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों को 'जा-जिन-जा' के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा यहाँ के नृत्य और संगीत में धारणाओं और आस्थाओं को व्यक्त करने का विशेष महत्त्व है। 'अजी लामू', 'रोप्पी', 'बुइया', 'हुरकानि', 'पोपिर', 'चालो' और 'पोनिंग' इत्यादि यहाँ के प्रमुख नृत्य हैं।

अरुणाचलप्रदेश के ठीक नीचे असम प्रदेश है जो कई आकर्षक नृत्यों और कर्णप्रिय संगीत के लिए जाना जाता है। असम का संगीत अपने पारम्परिक लोक वाद्ययन्त्रों के कारण अपनी अलग पहचान रखता है। जहाँ ये संगीत-प्रस्तुति के लिए 'पेपा', 'टोका', 'गोगोना', 'जिंगा', 'बहि' और 'दोतारा'-जैसे सुरवाले वाद्य-यन्त्रों का उपयोग करते हैं, वहीं ताल वाद्य के रूप में 'ढोल', 'खोल', 'डोबा', 'मृदंग', और 'नगाड़ा' का प्रमुखता से उपयोग करते हैं। बाँसुरी की श्रेणी में आनेवाले कई वाद्य-यन्त्र यहाँ के संगीत की विशिष्ट पहचान हैं। लोकसंगीत के अलावा ये भारत के सीमावर्ती देशों के संगीत के कई तत्त्वों को अपने संगीत में इस्तेमाल करते हैं। इनके संगीत में हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के कई रागों की झलक भी मिलती है। हालाँकि, इधर कई वर्षों से असम के प्रमुख शहरों में पाश्चात्य संगीत और पाश्चात्य वाद्य-यन्त्रों ने भी अपनी जगह बनाई है, फिर भी यहाँ के पारम्परिक संगीत की कर्णप्रियता और प्रसिद्धि में कोई विशेष कमी नहीं आई है। पारम्परिक गीतों में 'झूमर' और 'भरिगान', भक्ति-गीतों में 'बोरगीत', 'जिकिर-जारी', 'ऐनाम', 'दिहिनाम' और 'हिरानाम', बिहू-संगीत में 'बिहू' और 'हुज़री' इत्यादि प्रमुख हैं। नृत्यों में 'बिहू नृत्य' अत्यंत आकर्षक नृत्य है जो समूह में पारम्परिक वेशभूषा में



किया जाता है। 'बगुरंग', 'भोरताल' और 'झूमर' यहाँ के अन्य लोकनृत्य हैं जिन्हें अलग-अलग कबीलेवाले करते हैं।

असम से नीचे लेकिन पूर्व की ओर नागालैण्ड है जो मुख्यतः कबीलों से बना है। सोलह मुख्य कबीलों के अलावा कई छोटे कबीले हैं जिनकी सांस्कृतिक विरासत बड़ी समृद्ध है। संगीत यहाँ के लोगों का जीवन है और ऐसी मान्यता है कि सदियों पुरानी लोककथाएँ ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी यहाँ तक आई हैं। यहाँ के संगीत में पूर्वजों, उनकी गाथाओं और इतिहास का बड़ी सुंदरता से वर्णन किया जाता है। इसके अलावा यहाँ के संगीत में प्रेम और कल्पना को व्यक्त करने का सुन्दर प्रचलन है। कबीलों में बँटे होने के कारण नागालैण्ड की संस्कृति के कला-सम्प्रेषण में कबीलाई रंग दिखना स्वाभाविक है। इनके लोकसंगीत में तार-वाद्य की प्रधानता है जिसकी ध्वनि वायलिन और सारंगी से काफ़ी मिलती-जुलती है। साथ-ही-साथ ये लकड़ी के गोल और खोखले डब्बेनुमा टुकड़ों पर चमड़े की छावनी किए हुए ताल-वाद्यों का भी बहुतायत से उपयोग करते हैं। इन ताल-वाद्यों में 'जेमजी' नाम का ताल-वाद्य बड़ा कौतुहल उत्पन्न करता है जो जंगली भैंसे मिथुन के सिंग से बनाया जाता है। इसके अलावा बाँस के बने सुर और ताल-वाद्यों का भी यहाँ के संगीत में सुन्दर तरीके से उपयोग होता है। मूल तौर पर ये कबीलाई लोग अपने आस-पास उपलब्ध ऐसी किसी भी सामग्री से वाद्य-यंत्र का निर्माण करते हैं जिनसे अनोखी कर्णप्रिय या विशेष तरह की ध्वनि निकलने की सम्भावना होती है।



नागालैण्ड के ठीक नीचे मणिपुर है। मणिपुर के लोग संगीत से बड़ा प्रेम रखते हैं। यहाँ के पहाड़ी इलाकों और घाटी में रहनेवाले लोगों में संगीत का समान प्रचलन है। ये संगीत-प्रस्तुति में 'पेना' नाम के वाद्य का बहुतायत से उपयोग करते हैं जिसकी आकृति एकतारा या छोटी वीणा के समान होती है और इसे सारंगी की तरह धनुषनुमा लकड़ी से बजाया जाता है जिसमें तार पर रगड़वाले हिस्से में जानवरों जैसे घोड़े की पूँछ के बाल का इस्तेमाल किया जाता है। 'पेना इशेयि' प्रकार के संगीत-प्रस्तुति में इस वाद्ययन्त्र का इस्तेमाल विशेष तौर पर होता है जिसमें 'खम्बा-थोइबी' के प्रेमकथा का वर्णन किया जाता है। यहाँ के नृत्य अपनी पोशाकों और संचालन के कारण बड़े ही मनमोहक हैं। अधिकांश नृत्य कथाप्रधान हैं अर्थात् इन नृत्यों के माध्यम से ये कथा कहते हैं। इन नृत्यों में पौराणिक कथाओं, प्रेमकथाओं, सांस्कृतिक कथाओं, लोककथाओं और मान्यताओं का वर्णन किया जाता है। इन नृत्यों में धार्मिक और देवी-देवताओं पर आधारित नृत्य भी हैं। यहाँ के महत्त्वपूर्ण नृत्यों में 'लाई हरूब इशेयि', 'खम्बा-थोईबी', 'माइबि', 'पुंग चोलोम', 'रासलीला' और 'जगोई' बड़े प्रसिद्ध हैं। 'जगोई' यहाँ का शास्त्रीय नृत्य है जिसे भारत के सभी कोनों में शास्त्रीय नृत्य की श्रेणी में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है।

मणिपुर के नीचे मिजोरम है जहाँ के संगीत को 'मिजो संगीत' के नाम से जाना जाता है। यहाँ के संगीत में ताल-वाद्य ही प्रमुख हैं। हालाँकि, ये बाँसुरी का इस्तेमाल भी करते पाए गए हैं। इनके संगीत में उल्लास, अल्हड़पन, उमंग और ऊर्जा का मुख्य रूप से वर्णन होता है। यहाँ के नृत्य बड़े लुभावने होते हैं जो समूहों में किए जाते हैं। इन नृत्यों में 'चेराव' सर्वाधिक प्रसिद्ध है जिसे हम सभी 'बैम्बू डान्स' के नाम से भी जानते हैं। अन्य नृत्यों में 'छैह लम', 'सावलकिया', 'चई लम' और 'पर लम' भी बड़े आकर्षक और प्रसिद्ध हैं। पश्चिम में असम के नीचे त्रिपुरा है जहाँ लोकसंगीत के ढेर सारे रंग हैं। बाँस से बनी बाँसुरी-जैसे वाद्ययन्त्रों का बहुतायत से उपयोग करते हैं जिनमें 'सुमुई', 'सारिंदा', 'चोंगप्रेंग', 'लेबांग-लेबांगटी' प्रमुख हैं। ताल-वाद्य के रूप में ये 'खम' का उपयोग करते हैं। 'डांगडूं' यहाँ का एक महत्त्वपूर्ण साज है जो बहुत हद तक 'हार्प' से मिलता-जुलता है। त्रिपुरा के नृत्यों में 'गोरिया', 'हुक कईमणि', 'लेबांग बुमानी' और 'उआ बैम्बू' बड़े प्रचलित हैं।

त्रिपुरा के ठीक ऊपर और असम के ठीक नीचे मेघों का घर मेघालय है जहाँ ऊपर वर्णित सभी राज्यों की तरह लोकनृत्य और संगीत की प्रधानता है। ये अपने संगीत में ड्रम, बाँसुरी के विभिन्न प्रकार और हाथ में रखकर बजाए जानेवाले झाल-मंजीरे-जैसे धातु के वाद्य बजाते हैं। हालाँकि, इस राज्य में ईसाइयत के प्रसार के बाद यहाँ पाश्चात्य संगीत और पाश्चात्य वाद्य-यन्त्रों का भी धड़ल्ले से उपयोग होने लगा है और शायद अब यहाँ का लोकसंगीत अपना विशेष चरित्र खोता जा रहा है। इन सात राज्यों के अलावा सिक्किम एक और पहाड़ी राज्य है जो अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए विश्व में जाना जाता है। यहाँ के लोग अपनी संस्कृति और पर्यावरण के प्रति बड़े सजग और भावुक हैं। सिक्किम भारत का पहला आर्गेनिक राज्य कहा जाता है। इनका संगीत देवी-देवताओं, संस्कृति, रीति-रिवाजों पर आधारित है। ये विभिन्न उत्सवों पर भी तरह-तरह के गीत-संगीत का आयोजन करते हैं जिनमें लोकसंगीत की प्रचुर झलक मिलती है। यहाँ केवल गीत की जगह नृत्यमय संगीत की प्रधानता है जिनमें 'लू खांगथमो', 'घा तो कितो', 'ची रिमू', 'रेचुंग्मा', 'बे यु मिस्ता', 'ताशी जलधा' आदि प्रमुख हैं। 'इन्चे चाम' यहाँ का सबसे अद्‌भुत नृत्य है जो यहाँ के लामाओं द्वारा नकाब पहनकर किया जाता है।

इन आठ राज्यों की संस्कृति, कला और संगीत इतनी समृद्ध है कि इनको जानने में ही हमें वर्षों लग जायेंगे। यहाँ के लोकसंगीत से हम इन राज्यों और यहाँ के निवासियों का इतिहास भली-भाँति जान सकते हैं। लोकसंगीत हमें कुछ ऐसी बातों, विश्वासों, धारणाओं, परम्पराओं और रीति-रिवाजों के बारे में अवगत करा जाता है जो बड़ी-बड़ी पुस्तकें नहीं करा पातीं। इस हज़ारों वर्ष पुरानी सांस्कृतिक धरोहर को जीवित रखना हम भारतवासियों का दायित्व है।

चिकनगुनिया बुखार



■ डॉ. भारत सिंह 'भरत'
प्राकृतिक चिकित्सक

यह बुखार मच्छर काटने से होता है, अतः अपने चारों तरफ़ सफ़ाई रखें। कहीं पर पानी जमा न होने दें। कूलर का पानी हर सप्ताह बदलें। शरीर को पूरा ढककर रखें, मच्छरनाशक दवाई छिड़कें, मच्छरदानी लगाकर सोयें। रात्रि में शरीर में ऑडोमॉस का लेप करके सोयें अथवा व्यवस्था न होने पर सरसों का तेल शरीर में लगाकर सोयें। रात्रि में मच्छरनाशक टिक्की या रीफिल आदि का प्रयोग करें। घर में सुबह-शाम धूप बत्ती जरूर जलायें। घरों में खिड़की में परदे तथा जालियाँ लगायें। मच्छर जहाँ दिखे, उसे तुरन्त नष्ट कर दें।

आजकल सबसे ज्यादा दो ही बुखारों की चर्चा चल रही है– डेंगू और चिकनगुनिया। दोनों ही बुखार खतरनाक हैं– एक जानलेवा तो दूसरा असहनीय कष्टकारी। इन दोनों बुखारों का कारण एक ही तरह का मच्छर है। एडिस एजिप्टि (Asdes aegypti) तथा एल्बो-पिक्टस (albopictus) नामक इन मच्छरों के काटने पर अल्फा वायरस (Alpha Virus) होने से बुखार होता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 'व्यक्ति को मच्छर काटने के तीन से सात दिन बाद शरीर इसके लक्षण दिखाई देते हैं।' इसका प्रकोप अगस्त, सितम्बर और अक्टूबर में अधिक होता है। आयुर्वेद में इसको सन्धि ज्वर कहा जाता है।

लक्षणः मरीज को तेज सिरदर्द, खाँसी जुकाम से प्रारम्भ होकर कभी जी मिचलाना, उबकाई आना, मांसपंसियों में दर्द, जोड़ों में दर्द, थकान होना, त्वचा पर रेसिस, नाक से रक्त-स्राव, शरीर टूटना, भूख न लगना तथा लगातार बुखार रहना आदि इसके मुख्य लक्षण हैं।

परीक्षणः इस बुखार का परीक्षण से शेलोजिकल टेस्ट, जैसे– ELISA के द्वारा Antibodies में IgG और IgM तथा RT-PCR ब्लड काउन्ट आदि का पता लगाया जाता है। यदि वायरस से मरीज प्रभावित होता है, तो सकारात्मक रिपोर्ट आती है।

चिकुनगुनिया से बचने के उपाय

यह बुखार मच्छर काटने से होता है, अतः अपने चारों तरफ़ सफ़ाई रखें। कहीं पर पानी जमा न होने दें। कूलर का पानी हर सप्ताह बदलें। शरीर को पूरा ढककर रखें, मच्छरनाशक दवाई छिड़कें, मच्छरदानी लगाकर सोयें। रात्रि में शरीर पर ऑडोमॉस का लेप करके सोयें अथवा व्यवस्था न होने पर सरसों का तेल शरीर में लगाकर सोयें। रात्रि में मच्छरनाशक टिक्की या रीफिल आदि का प्रयोग करें। घर में सुबह-शाम धूप बत्ती जरूर जलायें। घरों में खिड़की में परदे तथा जालियाँ लगायें। मच्छर जहाँ दिखे, उसे



तुरन्त नष्ट कर दें।

चिकनगुनिया में प्राकृतिक चिकित्सा :

1. बुखार से पीड़ित मरीज को तरल पेय अधिक-से-अधिक पिलायें। पानी में ग्लूकोज डालकर पिलायें। जूस पिलायें।
2. हरे ज्वारे का रस अनार रस समभाग मिलाकर दिन में 2-3 बार पिलायें। अंगूर का रस भी अत्यंत लाभकारी होता है।
3. भोजन न देकर मरीज को हरा पालक 100 ग्रा., गाजर 100 ग्राम, चुकन्दर 50 ग्राम, एक टमाटर, थोड़ी हरी धनिया, थोड़ा पुदीना, थोड़ा अदरक तथा एक हरा आँवला, सबका रस निकालकर 1-1 गिलास दिन में दो बार पिलायें, इससे भूख बढ़ेगी, हिमोग्लोबिन बढ़ेगा, आर.बी.सी. की कमी नहीं होगी।
4. गिलोय-रस 20-20 मि.ली. दिन में 2-3 बार दें। एलोवेरा का रस भी 20-20 मि.ली. समभाग पानी मिलाकर दिन में 2 बार पिलायें।
5. पपीते के पत्ते का रस भी दिन में दो बार 4-4 चम्मच एक कप पानी में मिलाकर पिलायें।
6. हड्डियों में दर्द होने पर हल्दी, सोंठ, गुड़ का काढ़ा बनाकर गुनगुना-गुनगुना पिलायें, लाभ होगा।
7. तुलसी-पत्र 11, अजवाइन एक चम्मच, नीम के पत्ते 5 कूटकर गुड़ डालकर आधा चम्मच हल्दी चूर्ण एक गिलास पानी में उबालें आधा पानी रहने पर छानकर गर्म-गर्म पियें, लाभ होगा।
8. तुलसी के 11 पत्ते, 200 ग्राम गाजर, 200 ग्राम अंगूर– सबका जूस निकालकर पियें। ऐसा दिन में दो बार प्रयोग करें, बुखार में लाभ होगा।



विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 'व्यक्ति को मच्छर काटने के तीन से सात दिन बाद शरीर में इसके लक्षण दिखाई देते हैं।' इसका प्रकोप अगस्त, सितम्बर और अक्टूबर में अधिक होता है। आयुर्वेद में इसको सन्धि ज्वर कहा जाता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

चिकुनगुनिया बुखार में आयुर्वेद बहुत लाभकारी है :

1. महासुदर्शन चूर्ण एक-एक चम्मच दिन में 2-3 बार पानी से ले। बच्चों को आधा-आधा चम्मच दें।
2. योगराज गूगल की 2-2 गोली दिन में दो बार पानी से दें। दर्द में लाभ होगा।
3. पंचतिक्त काश्यम 2-2 चम्मच समभाग जल मिलाकर सुबह-शाम लें। बुखार ठीक हो जाएगा।
4. धन्वन्तरम् जुलिका एक-एक गोली दिन में दो बार पानी से लें। खांसी, चक्कर आना, जलन में लाभकारी है।
5. गिलोय घनवटी 2-2 गोली दिन में दो बार पानी से लें। बुखार में बहुत लाभ होगा।
6. निर्गण्डी चूर्ण या निर्गुण्डी वटी एक-एक गोली दिन में दो बार पानी से लें मांसपेशियों के दर्द में लाभ मिलेगा।
7. अश्वगन्धा-चूर्ण गुनगुने दूध में एक चम्मच घोलकर मीठा मिलाकर लें, इससे तनाव, दर्द, जलन दूर होगी।
8. सिंगनाद योगराज गूगल की 2-2 गोली गुनगुने पानी से दिन में दो बार लें, यह दर्दनाशक एंटी इन्फ्लेमेटरी दवा है।
9. हकम चूर्ण (प्लेनिट आयुर्वेद का) 3-5 ग्राम गर्म पानी से दिन में दो बार लें, इससे जोड़ों का दर्द, सूजन ठीक होती है।
10. त्रिभुवन कीर्ति रस या संजीवनी वटी की 2-2 गोली पानी से दिन में दो बार लें, बुखार में लाभ होगा।
11. भूख न लगे तो अग्नितुण्डी वटी 2-2 गोली गुनगुने पानी से दिन में दो बार लें।
12. अमृतारिष्ट दो-दो चम्मच भोजन के बाद दिन में दो बार लें, बुखार में लाभप्रद है। दवा लेने के बाद ड्राइविंग न करें।

नोट : बुखार होने पर शीघ्र ही किसी चिकित्सक को दिखाएँ तथा रक्त का परीक्षण अवश्य करायें।

ईशावास्यमिदं सर्वम्

विज्ञान एवं अध्यात्म की दूरी को पाटने का कार्य

यह केवल दूरदर्शी, साहसी एवं कुशल नेतृत्व ही कर सकता है



■ **ले. कर्नल आत्म विजय गुप्ता** (रि.) (राजोरी वाले)
पूर्व रजिस्ट्रार, द महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय ऑफ बड़ौदा,
पूर्व हैड ऑफ डिर्पाटमेंट ऑफ ऑप्टो इलोक्ट्रोनिक्स (ओआईसी ग्रुप)
फैकल्टी ऑफ इंस्ट्रूमेन्टेशन टैक्नोलॉजी, ईएमई स्कूल बड़ौदा

शिक्षाविद् प्रायः अधूरी एवं अपुष्ट जानकारी (सूचनाओं) को अज्ञान की, सुव्यवस्थित जानकारी को ज्ञान की, ठोस ज्ञान को बुद्धिमत्ता की, ठोस बुद्धिमत्ता को व्यावहारिक ज्ञान की तथा ठोस व्यावहारिक ज्ञान को संपूर्ण ज्ञान की श्रेणी में स्थान देते हैं। परंतु विचारणीय विषय है कि हमें अपने अंदर की ओर झाँकने, अपना मूल्यांकन करने की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त होती है? यह प्रेरणा अस्थिर मस्तिष्क से, रचनाशील मस्तिष्क से, अनुशासित मस्तिष्क से, अथवा सुसंस्कारित मस्तिष्क में से किससे प्राप्त होती है? प्रत्येक व्यक्तित्व के वैयक्तिक स्तर का ध्यान रखते हुए भी अधिकांश व्यक्तियों के बारे में हम कह सकते हैं कि यह प्रेरणा 'आंतरिक' है। यह भी अनुभव किया गया है कि अधिकांश लोग 'आरंभिक स्थिति' से ही आगे बढ़ना बंद कर देते हैं। कुछ लोग ही इस चिन्तन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। इस प्रक्रिया में अन्तिम उत्तर यही मिलता है 'हमें अंतःप्रेरणा से ही मार्गदर्शन मिल रहा है।'

अगला प्रश्न उठता है, यह 'अंतःप्रेरणा' या 'स्वतःप्रेरणा' क्या है? मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमें 'आंतरिक शक्ति' ही प्रेरित करती है। हम सबमें अपार शक्तिपुंज है। यही आंतरिक शक्ति हमारे अंदर विचार एवं संवेदनाएँ उत्पन्न करती है तथा हमें अपने स्थान पर अपना कर्तव्य पूर्ण करने की प्रेरणा देती है। यह आंतरिक शक्ति 'प्राणिक शक्ति' कहलाती है तथा यह महानतम शक्ति है। यद्यपि सभी में यह शक्ति समान रूप से विद्यमान है, तथापि प्रत्येक व्यक्ति बाह्य रूप से इसका प्रदर्शन सीमित रूप से ही करता है। 'विभिन्न व्यक्तियों में इस शक्ति को बाह्य रूप से प्रदर्शित करने की क्षमता' विषय 'खोज का विषय' है जिसमें भौतिकविज्ञान हमारी सहायता कर सकता है।

भौतिकविज्ञान तथा अध्यात्म– दोनों में ही इस प्रश्न का उत्तर देने की अलग विधियाँ हैं। प्रश्न है कि 'विभिन्न लोग अलग-अलग ढंग से क्यों सोचते हैं? उनके स्वभाव, रुचियाँ तथा क्षमताएँ अलग-अलग क्यों हैं? भौतिकविज्ञान इन विभिन्नताओं का कारण 'परिस्थितियों' तथा उनके पास 'उपलब्ध साधनों' को मानता है तथा अध्यात्मविज्ञान 'कर्मचक्र', विकास की प्रक्रिया तथा जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों की पूँजी को मानता है। अतः भौतिकविज्ञान के लिए चुनौती है कि वह समय स्पेस (नभमण्डल), चेतनता के समग्र अध्ययन को अपने कार्यक्षेत्र में स्थान दे तथा इन विषयों के अपने अध्ययन एवं अनुभव को व्यक्त करे। हम यह मानते हैं कि भौतिकविज्ञान में प्रथम दो क्षेत्रों में पर्याप्त शोध-कार्य करने की अत्यंत आवश्यकता है। यद्यपि भौतिकविज्ञान के क्षेत्र के विषय में सोच में कुछ परिवर्तन आया है, तथापि विज्ञान एवं अध्यात्म के बीच की दूरी को पाटने के लिए भौतिकविज्ञान को उस क्षेत्र में सक्रियता से शोध-कार्य करना होगा जो क्षेत्र अब तक केवल अध्यात्म के अंतर्गत माने जाते रहे हैं। इस संदर्भ में मानसिकता में परिवर्तन लाने के लिए एक साहसी एवं दूरदर्शी नेतृत्व की सहायता की आवश्यकता है।

मानव शरीर में अपार आंतरिक शक्तियाँ हैं, परंतु इच्छाशक्ति अस्थिर (लचकीली) (फ्लैक्सिबल) है। मनुष्य की इस मिश्रित प्रकृति ने उसे अन्य प्राणियों से अलग पहचान दी है। मनुष्य जहाँ दूरदर्शिता की सोच से काम करता है, वहां अन्य प्राणी (पशु) केवल स्वाभाविक प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर सभी क्रियाएँ करते हैं। मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति के आधार पर कार्य करने के लिए स्वतंत्र है, परंतु उचित रूप से विकसित न होनेवाले मनुष्य भी केवल प्रवृत्तियों के अधीन ही काम करते हैं। उनके लिए यह स्थिति दुःखदायी होती है। विचारों के समान प्रवृत्तियों में भी सुधार हो सकता है। विज्ञान इस दृष्टि से सहायक हो सकता है।

अध्यात्म में उपलब्ध सिद्धान्त एवं क्रियाओं से आत्मजागृति होती है। संभव है अध्यात्म की जटिलताओं एवं अध्यात्म गुरुओं द्वारा गोपनीयता अपनाने के कारण अतीत काल में इस ज्ञान को सामान्य व्यक्ति की पहुँच से बाहर रखा गया होगा । परंतु अब 'गिरि पंथ' के परम गुरु 'महावीर बाबा' ने अध्यात्मज्ञान क्रियायोग को सामान्य व्यक्ति तक पहुँचाने की अनुमति प्रदान कर दी है। ऐसी मान्यता है कि मानव

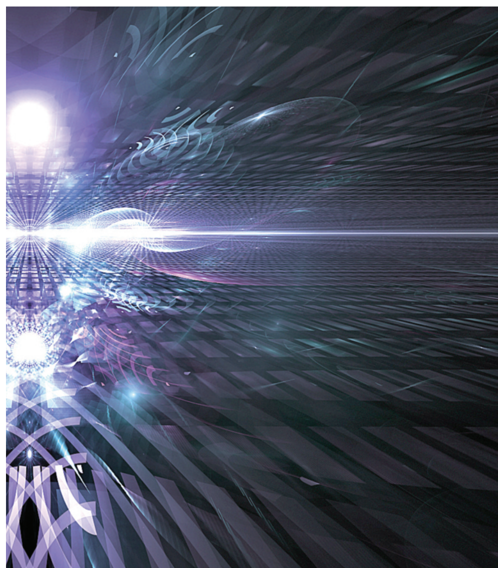


में दिव्यता न देख पानेवाले लोग 'क्रियाभोग' के नियमित एवं निष्ठापूर्वक अभ्यास द्वारा स्वयं में उपस्थित 'दिव्यता' को पहचानने लगते हैं। परमहंस योगानन्द द्वारा रचित 'योगी की आत्मकथा' पुस्तक में क्रियायोग-विधि का वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को आधुनिक आध्यात्मिक ग्रंथ की मान्यता प्राप्त है। इस ग्रंथ का 21 से अधिक भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। संसार के अनेक विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में इस ग्रंथ का सदुपयोग पाठ्य-पुस्तक अथवा सन्दर्भ पुस्तक के रूप में किया जा रहा है। अनेक पाठकों ने इस ग्रंथ को अपने जीवनकाल में पढ़े गए सर्वोत्तम ग्रंथ तथा मन-मस्तिष्क की ग्रंथियाँ खोलकर अध्यात्म की ओर ले जानेवाले ग्रंथ की संज्ञा दी है। किसी के मार्गदर्शन में इस योग का सतत अभ्यास करनेवाले लोग अपने प्रयत्नों से ही अध्यात्म का लाभ उठा पाते हैं। तीन प्रमुख प्रश्नों–

1. अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति के लिए मन-मस्तिष्क की ग्रंथियाँ खोलना क्यों आवश्यक है?
2. हम उच्च जागृत अवस्था क्यों प्राप्त करना चाहते हैं?
3. विज्ञान इस सन्दर्भ में कैसे सहायक हो सकता है?

के उत्तर के रूप में अधिकांश लोग कहेंगे : 'अर्थपूर्ण एवं रचनात्मक जीवन जीने के लिए' अध्यात्म की आवश्यकता है।'

मानव स्वभाव से सृजनात्मक है तथा 'सृजनता से ही उसे आनन्द प्राप्त होता है।



सृजनता अनेक दिशाओं में प्रकट की जा सकती है, उदाहरणार्थ मस्तिष्क की दौड़ से नये-नये आविष्कारों एवं अनुसंधान एवं संशोधन विज्ञान के माध्यम से सुव्यवस्थित पद्धति से ज्ञान के आयोग द्वारा, कोई भी कार्य सम्पन्न किया जा सकता है। यह विचार आध्यात्मिक क्षेत्र में लागू होता है। शास्त्रों में बताया गया है कि मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति मोक्ष प्राप्त करना है। अतः मनुष्य को अपनी समग्र शक्तियों का उपयोग इस अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति में करना चाहिए। आवश्यकता है कि हम भौतिकविज्ञान तथा मन, मस्तिष्क एवं शरीर पर इसके प्रभावों के बीच संबंधों (प्रभावों) को समझें। उदाहरणार्थ हमारे चिन्तन की गुणवत्ता न्यूरो ट्रांसमीटर्स के सघनीकरण (कॉन्सैंट्रेशन), विभिन्न ऑरिक रंगों तथा सजगता के स्तर में परिवर्तन लाती है। ये तीनों मापदण्ड– न्यूरोट्रांसमीटर्स, ऑरा तथा सघनीकरण तथा मस्तिष्क की प्रौढ़ता के स्तरों को प्रयोगशाला में मापा जा सकता है। जहाँ न्यूरो ट्रांसमीटर्स की सघनता के माप द्वारा दर्द, हर्ष आदि की संवेदनाओं का पता चलता है, वहीं 'केरेलीन फोटोग्राफी' द्वारा व्यक्ति के ऑरा (आध्यात्मिक स्तर) तथा ब्रेन फ्रिक्वेंसी मीटर के द्वारा व्यक्ति की सजगता का स्तर मापा जा सकता है। 'केस यंत्र', जो एक हैल्मेट जैसा लगता है, और चाँदी तथा सोने के एलेक्ट्रोडज से बनता है, बाज़ार में उपलब्ध है। इस यंत्र से निकलनेवाली फ्रिक्वेंसीज, मस्तिष्क की फ्रिक्वेंसीज पर नियंत्रण करके व्यक्ति को 'पूर्ण विश्राम' की स्थिति में अवस्थित कर देती है। इस प्रकार के प्रयोगों से विज्ञान एवं 'विचार-पद्धति' में परस्पर संबंधों के स्थापना में सहायता मिल सकती है।

इस प्रकार तकनीकी के उपयोग तथा प्राप्त परिणामों के आधार पर नयी पीढ़ी में एक आत्मविश्वास की भावना जगाई जा सकती है कि अध्यात्म ज्ञान, ज्ञान के विभिन्न नये क्षेत्रों में प्रवेश करके विश्व को अध्यात्म से पूर्ण रूप से जोड़ने में सक्षम है।

नोबेल पुरस्कारप्राप्त महामहिम दलाई लामा ने गंभीरतापूर्वक कहा है कि विज्ञान एवं अध्यात्मज्ञान के बीच की दूरी को तुरंत पाटने की आवश्यकता है। उनका विचार है कि 'अब तक हम केवल भौतिक तत्त्वों तथा उनकी परस्पर तुलना के क्षेत्र में रुचि लेते रहे हैं, हमने 'आत्मजागृति' (अनुभूति) के बारे में पर्याप्त शोध-कार्य नहीं किया है। मुझे पूर्ण आशा है कि आगामी शताब्दी में अधिक लोग आत्मानुभूति तथा आत्मजागृति के प्रति अधिक आकर्षित होंगे। नवीन पीढ़ी को इस दिशा में लगना होगा।'

'फीजियॉलॉजी तथा औषधविज्ञान' में नोबेल पुरस्कार विजेता जॉर्ज वाल्ड का विचार है कि 'आत्मानुभूति हमें किसी प्रकार के भौतिक लक्षण प्रदान नहीं करती। आत्मजागृति की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के बारे में उसके ज्ञान (अनुभूति) के बिना कुछ नहीं अनुभव किया जा सकता।'

आचार्य ओशो रजनीश कहते हैं, 'जब हम अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा पूर्णतया विरुद्ध दिशा में लगाते हैं, तभी हममें आध्यात्मिक परिवर्तन आता है। सामान्यतः यह ऊर्जा बहिर्गामी होती है, परंतु अंतर्गामी होने लगती है। यदि ऊर्ध्वगामी (नीचे की ओर) होती है तो अधर्गामी हो जाती है। यह ऊपर की ओर जानेवाली ऊर्जा 'कुंडलिनी' कहलाती है। इसकी गति रीढ़ की हड्डी में अनुभव की जा सकती है।

जैसे-जैसे यह ऊपर की ओर गति करती है, वैसे-वैसे हम भी ऊपर की ओर यात्रा करने लगते हैं। धीरे-धीरे यह ऊर्जा सिर के अन्तिम छोर तक पहुँचती है, जो सातवाँ द्वार कहलाता है, हम भी सर्वोच्च व्यक्तित्व बन जाते हैं।' गुरु जी इसे 'मनुष्य क्रमांक सात' कहते हैं।

आधुनिक दार्शनिकों के अनुभवों को व्यर्थ नहीं गँवाया जा सकता। विज्ञान को समय, स्पेस तथा आत्मजागृति के क्षेत्र में शोध-कार्य में लगना ही होगा। प्राणिक ऊर्जा के क्षेत्र में शोध-कार्य केवल अध्यात्म-क्षेत्र के अंतर्गत माना जाता रहा है, न कि भौतिकविज्ञान की किसी श्रेणी का। अतः हमें अत्यंत सक्रियतापूर्वक अध्यात्मविज्ञान को संरचनात्मक दृष्टि से तथा सुव्यवस्थित रूप से शीघ्रातिशीघ्र सामान्य प्रशिक्षण के अंतर्गत लाना होगा, ताकि हमारा समाज 'पाषाण-युग' की ओर धकेला न जाए। इस कार्य के कार्यान्वयन के लिए हमें एक सुदृढ़, शक्तिशाली, दूरद्रष्टा नेता की आवश्यकता है।

भारतीय संविधान में है पूर्वोत्तर के लिए विशेष प्रावधान

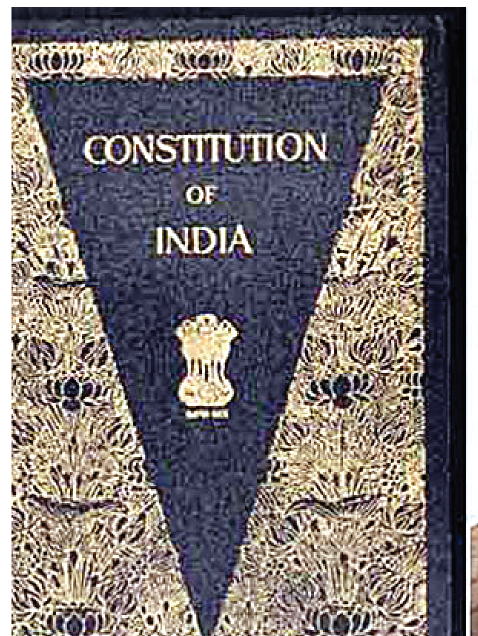


▪ एड. (डॉ.) बलराम सिंह
(एम.ए., एलएल.एम.,पीएच.डी. (लॉ)
अधिवक्ता, उच्चतम न्यायालय)

भारतीय संघ के उत्तर-पूर्व में सात राज्य हैं जिनके नाम क्रमशः अरुणाचलप्रदेश, आसाम, त्रिपुरा, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम और नागालैण्ड हैं। नागा लोगों का मत है कि वह एक पृथक् राष्ट्र हैं और वे भारत संघ के साथ अपना विलय नहीं मानते। सन् 1929 में जब ब्रिटिश सरकार के साथ भारत के पुनर्गठन की चर्चा हुई थी, तब भी नागालैण्ड की ओर से नागालैण्ड का अलग राज्य स्थापित करने के लिए ज्ञापन दिया गया था। भारत से स्वतंत्रता की उनकी मांग आज भी उठती रहती है। नागा-विद्रोह को समाप्त करने के लिए समय-समय पर केन्द्र सरकार ने विभिन्न प्रकार के प्रयास किए हैं। विद्रोही नेताओं से बातचीत होती रहती है। परंतु सशस्त्र विद्रोह निरन्तर चल रहा है। यद्यपि नागालैण्ड में संवैधानिक रूप में चुनी हुई लोकतान्त्रिक सरकार है, तथापि समानान्तर सरकार चलाने के दावे भी किए जाते रहे हैं।

मणिपुर की दशा भी नागालैण्ड जैसी ही है। वहाँ जन स्वतंत्रता सेना, संयुक्त राष्ट्रीय स्वतंत्रता मय और जन क्रान्तिकारी दल (कांगलेपक) और अन्य संगठन भारतीय संघ का विरोध करते हैं और पूर्ण स्वतंत्रता की मांग करते हैं। ये संगठन 21 सितम्बर, 1949 को हुए समझौते को नहीं मानते जिसके अनुसार मणिपुर का भारत में विलय हुआ है। एक प्रतिवेदन के अनुसार आतंकवादी संगठन मणिपुर के कई जिलों में समानान्तर सरकार चला रहे हैं। असम में भाषाई और बांग्लादेशी घुसपैठियों के विवाद बहुत पुराने हैं। असम गण परिषद् और अखिल असम छात्र संगठन-जैसे संगठन वहाँ आन्दोलन करते रहते हैं। सन् 1970 के बाद वहाँ बहुत से हिंसक आन्दोलन हुए हैं। सन् 1983 में नेलीय के भयावह जातीय नरसंहार के पश्चात् तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने 1985 में असम समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसमें वहाँ की सांस्कृतिक और आर्थिक प्रगति से संबंधित महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं। समझौता असफल होने पर वहाँ उल्फा और बोडो-आन्दोलन जारी है। त्रिपुरा में भी हिंसक आतंकवादी आन्दोलन बहुत लम्बे समय से चल रहे हैं। मिजोरम में भी इस प्रकार की आंतकवादी घटनाएँ घटित होती रहती हैं।

उत्तर-पूर्व के सातों राज्यों की समस्याओं के स्थायी समाधान के लिए भारतीय संविधान में विशेष प्रावधान किए गए हैं। संविधान के अनुच्छेद 371-अ (जो संविधान में जोड़ा गया और 1 दिसम्बर, 1963 से लागू हुआ) में नागालैण्ड राज्य के संबंध में विशेष प्रावधान किए गए हैं। अनुच्छेद 371-अ (1)(क) के अनुसार संसद का कोई भी अधिनियम, जो नागाओं की सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों, नागा प्रथा विधि और प्रक्रिया, नागा प्रथा-विधि के संबंध में दीवानी एवं आपराधिक न्याय शासन प्रणाली और भूमि के स्वामित्व और अन्तरण और इसके संसाधनों के संबंध में बनाया गया हो, नागालैण्ड राज्य की विधानसभा की स्वीकृति के बिना लागू नहीं होगा। अनुच्छेद 371-अ(1)(क) के अनुसार नागालैण्ड राज्य में क़ानून एवं व्यवस्था की स्थिति के संबंध में नागालैण्ड के राज्यपाल का विशेष उत्तरदायित्व होगा और यदि उनकी राय में यदि राज्य में राज्य स्थापित होने से पहले नागा पहाड़ियों त्वेनसांग क्षेत्र या उसके किसी भाग में होनेवाली आन्तरिक बाधाएँ (गड़बड़ियाँ) जारी रहती हैं, तो राज्यपाल अपने कर्त्तव्य के निर्वहन में मन्त्रिपरिषद् से सलाह लेने के पश्चात् कार्यवाही करने के लिए अपना व्यक्तिगत निर्णय ले सकते हैं। परंतु यदि प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कोई विषय इस प्रकार का है या नहीं है कि राज्यपाल उपर्युक्त उपभाग (2) के अंतर्गत व्यक्तिगत निर्णय ले सकते हैं तो उनके द्वारा अपने विवेक के आधार पर लिया गया निर्णय अन्तिम होगा और राज्यपाल द्वारा लिए गए निर्णय को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि उन्हें व्यक्तिगत आधार पर निर्णय लेना चाहिए था या नहीं। परंतु यदि राज्यपाल द्वारा प्रतिवेदन प्राप्त होने पर या अन्यथा राष्ट्रपति सन्तुष्ट हों कि विधि एवं व्यवस्था की स्थिति के संबंध में राज्यपाल के लिए विशेष उत्तरदायित्व की



आवश्यकता नहीं है तो वह आदेश द्वारा निर्देश कर सकते हैं कि आदेश में अंकित तिथि से राज्यपाल का उपर्युक्त विशेष दायित्व समाप्त हो जाएगा।

अनुच्छेद 371-अ(1)(ग) के अनुसार किसी अनुदान की मांग की अनुशंसा करने के संबंध में नागालैण्ड के राज्यपाल सुनिश्चित करेंगे कि भारत सरकार द्वारा भारत की संचित निधि से प्रदत्त धनराशि किसी विशेष कार्य या सेवा का उद्देश्य हेतु है जो उस अनुदान की मांग में सम्मिलित है और किसी अन्य मांग में नहीं है। अनुच्छेद 311-अ(1)(घ) के अनुसार त्वेनसांग ज़िले के लिए एक 35-सदस्यीय क्षेत्रीय परिषद् स्थापित की जाएगी और राज्यपाल अपने विवेक के अनुसार इसके संगठन, सदस्यों की योजनाएँ, उनका कार्यकाल, वेतन एवं भत्तों और उसके संचालन के लिए प्रक्रिया निर्धारित करने संबंधी आदि नियम बनाएँगे।

अनुच्छेद 371-(अ)(2) के अनुसार त्वेनसांग ज़िले के प्रशासन-संबंधी विशेष नियम बनाए गए हैं। क्षेत्रीय परिषद् की अनुशंसा पर इस ज़िले का प्रशासन राज्यपाल द्वारा चलाया जा सकता है। राज्यपाल को धन-आवंटन, क़ानूनों के लागू होने, विकास, विधानसभा में त्वेनसांग ज़िले के प्रतिनिधि नियुक्त करने और इस ज़िले के कार्यों संबंधी मंत्री के अधिकारों की व्याख्या की गई है। यह



सन् 1929 में जब ब्रिटिश सरकार के साथ भारत के पुनर्गठन की चर्चा हुई थी, तब भी नागालैण्ड की ओर से नागालैण्ड का अलग राज्य स्थापित करने के लिए ज्ञापन दिया गया था। भारत से स्वतंत्रता की उनकी मांग आज भी उठती रहती है। नागा-विद्रोह को समाप्त करने के लिए समय-समय पर केन्द्र सरकार ने विभिन्न प्रकार के प्रयास किए हैं।

प्रावधान स्पष्ट रूप से किया गया है कि त्वेनसांग ज़िले के संबंध में किसी भी विषय के संबंध में अन्तिम निर्णय लेने का अधिकार राज्यपाल का होगा। इसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद में राज्य विधानसभा के संबंध में भी प्रावधान किए गए हैं।

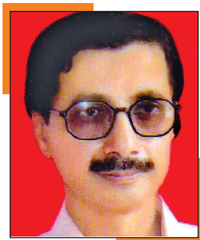
अनुच्छेद 371-ब असम राज्य के विषय में विशेष प्रावधान करता है। इसके अनुसार राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा असम राज्य के संबंध में राज्य विधानसभा की एक समिति की स्थापना और कार्यप्रणाली की व्यवस्था कर सकते हैं। असम विधानसभा के सदस्य छठी अनुसूची के भाग 20 की तालिका के भाग (1) में उल्लिखित जनजातीय क्षेत्रों से चुने गए हैं, इस समिति के सदस्य बनाए जाएंगे।

अनुच्छेद 371-स मणिपुर राज्य के संबंध में विशेष प्रावधान करता है। इसके अनुसार राष्ट्रपति राज्य विधानसभा की एक समिति की स्थापना और कार्यप्रणाली के लिए आदेश दे सकते हैं। इस समिति के सदस्य राज्य विधानसभा के उन सदस्यों में से चुने जाएँगे जो राज्य विधानसभा में राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों से चुने गए हैं। इस समिति के समुचित संचालन के लिए राज्यपाल के विशेष उत्तरदायित्व के लिए भी प्रावधान वह कर सकते हैं। राज्यपाल पर्वतीय क्षेत्रों के विकास और प्रशासन के संबंध में प्रतिवर्ष या राष्ट्रपति द्वारा मांगे जाने पर उन्हें प्रतिवेदन देंगे और केन्द्र की कार्यपालक शक्तियों को राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों के संबंध में प्रयुक्त कर सकते हैं।

संविधान का अनुच्छेद 371-(फ) सिक्किम राज्य के संबंध में विशेष प्रावधान करता है। इसके उपभाग (क) के अनुसार सिक्किम विधानसभा में सदस्यों की संख्या 30 से कम नहीं होगी। उपभागों (ख), (ग), (घ), (ङ), (च) में सिक्किम विधानसभा के गठन और सदस्यों के संबंध में उल्लेख है। उपभाग (छ) के अनुसार सिक्किम के राज्यपाल का शान्ति बनाए रखने और सिक्किम की जनसंख्या के विभिन्न भागों का सामाजिक एवं आर्थिक विकास सुनिश्चित करने तथा उसकी समुचित व्यवस्था का विशेष दायित्व होगा। राज्यपाल इस उपभाग में वर्णित विशेष दायित्व के निर्वहन के लिए राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर जारी किए गए निर्देशों के अधीन अपने विवेक से कार्य करेंगे। अनुच्छेद के अन्य उपभागों में नागरिक एवं न्यायिक प्रशासन से संबंधित सामान्य प्रावधान किए गए हैं। अनुच्छेद 371-(छ) में मिजोरम राज्य के संबंध में विशेष प्रावधान किए गए हैं। अनुच्छेद के उपभाग (क) के अनुसार संसद द्वारा पारित कोई भी क़ानून, जो मिजो लोगों के धार्मिक, सामाजिक रीतियों, प्रथागत क़ानून और प्रक्रिया, उनके प्रथागत क़ानून के निर्णय के संबंध में दीवानी एवं आपराधिक प्रशासन के मामलों और ज़मीन के स्वामित्व और अन्तरण के संबंध में है, तो वह क़ानून मिजोरम राज्य विधानसभा द्वारा प्रस्ताव पारित होने के बाद लिए गए निर्णय पर ही लागू हो सकता है।

अनुच्छेद 371-ह अरुणाचलप्रदेश राज्य के संबंध में विशेष प्रावधान करता है। अनुच्छेद के उपभाग (क) के अनुसार अरुणाचलप्रदेश के राज्यपाल को क़ानून एवं व्यवस्था की स्थिति बनाए रखने और इस संबंध में अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करने में राज्यपाल को विशेष दायित्व प्रदान किया गया है और वह मंत्रिपरिषद् से सलाह करने के पश्चात् इस संबंध में कार्यवाही करने के लिए व्यक्तिगत निर्णय लेंगे और वह निर्णय अन्तिम होगा और इस संबंध में यदि राज्यपाल की अनुशंसा पर या अन्यथा राष्ट्रपति संतुष्ट हो जाएँ कि राज्यपाल के विशेष दायित्व के प्रावधान की आवश्यकता नहीं है, तो विशेष दायित्व-संबंधी प्रावधान को समाप्त कर सकते हैं।

जयमती असमिया की पहली बोलती फिल्म

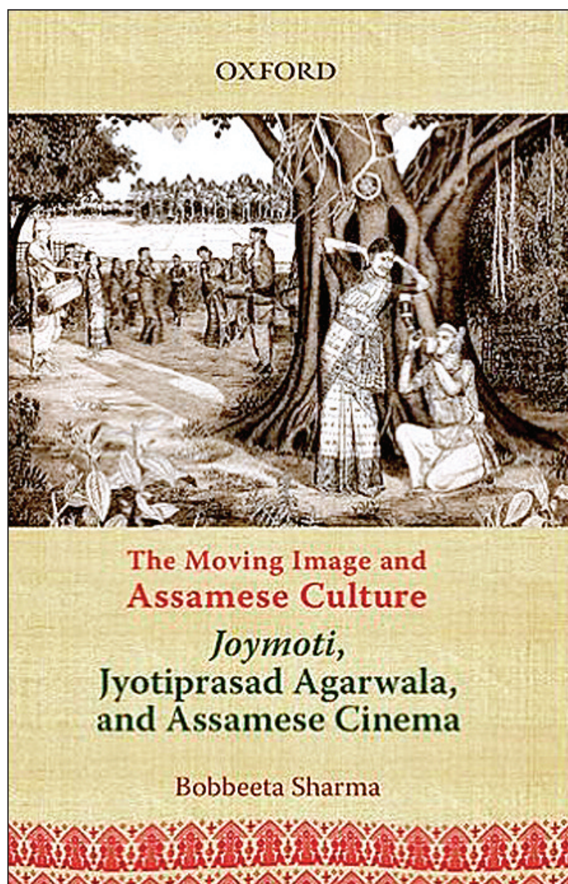


▪ प्रफुल्ल चन्द्र ठाकुर
स्वतंत्र पत्रकार

भारतीय भाषाओं की फ़िल्मों के बीच असमिया फ़िल्म को सम्मानजनक स्थान प्राप्त है। असमिया फ़िल्म का प्रारम्भ 1935 ई. से होता है। 10 मार्च, 1935 ई. को प्रदर्शित फ़िल्म 'जयमती' को अयमिया की पहली बोलती फ़िल्म होने का गौरव प्राप्त है। इससे पूर्व 14 मार्च, 1931 को प्रदर्शित 'आलम आरा' भारत की पहली बोलती फ़िल्म रही। उसी वर्ष तमिल की 'कालिदास' तथा बांग्ला की 'जमाई षष्ठी' अपनी भाषाओं की प्रथम बोलती फ़िल्म बनी। असमिया सिनेमा के पितृपुरुष कहे जानेवाले रूप कोंवर, ज्योति प्रसाद अगरवाला ने 'जयमती' का निर्माण किया। अगरवाला को असमिया सिनेमा का जन्मदाता कहलाने का गौरव भी मिला। असमिया साहित्य के 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' के रूप में सुविख्यात लक्ष्मीनाथ बेजबरूवा के नाटक पर आधारित फ़िल्म है– जयमती। नाट्यकृति 'जयमती कुँवरी' का प्रकाशन 1915 ई. को हुआ था। असम के इतिहास में जयमती सर्वश्रेष्ठ नारी मानी जाती हैं। असमिया संस्कृति में ऐसी नारी पर केन्द्रित फ़िल्म का निर्माण करना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। असम के जनसमाज में जयमती का प्रेरक चरित्र सम्मानित है। वह देशभक्त, वीरांगना और पति के प्रति समर्पित आदर्श नारी का प्रतीक है। जयमती प्रताड़ना झेलने के बाद भी अपने दृढ़ निश्चय पर डटी रहीं। फ़िल्मकार ज्योति प्रसाद अगरवाला ने शोषण और अन्याय के विरुद्ध समाज को जागरूक, एकजुट तथा संघर्षशील बनाने के उद्देश्य से आदर्श नारी का प्रतीक बनी जयमती-जैसे चरित्र का चयन किया। इस फ़िल्म के निर्माण के साथ ही ज्योति प्रसाद अगरवाला असमिया सिनेमा के प्रथम निर्माता, निर्देशक, नृत्य-निर्देशक, संगीत-निर्देशक, दृश्य निर्देशक, पटकथा-लेखक और संवाद-लेखक बन गये। अगरवाला ने कोनार्ड वोल्फ इंस्टीट्यूट, जर्मनी में सात माह तक फ़िल्म-निर्माण की तकनीक का बारीकी से प्रशिक्षण लिया। वह भारत आने पर 1933 ई. से फ़िल्म-निर्माण में सक्रिय हो गये। उन्होंने तेजपुर (असम) में चित्रलेखा मूवीटोन कंपनी की स्थापना की। कम्पनी के फ़िल्म-शिविर को 'चित्रवन' के नाम से बनाकर वहाँ साउण्ड स्टूडियो प्रारम्भ किया। फ़िल्म के सेट का निर्माण बाँस से किया गया। उस समय फ़िल्म-निर्माण के लिए नारी-पात्रों को खोजना



असमिया सिनेमा के पितृपुरुष कहे जानेवाले रूप कोंवर, ज्योति प्रसाद अगरवाला ने 'जयमती' का निर्माण किया। अगरवाला को असमिया सिनेमा का जन्मदाता कहलाने का गौरव भी मिला। असमिया साहित्य के 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' के रूप में सुविख्यात लक्ष्मीनाथ बेजबरूवा के नाटक पर आधारित फ़िल्म है— जयमती।



असमिया सिनेमा में प्रथम निर्माता, निर्देशक, नृत्य-निर्देशक, संगीत-निर्देशक, दृश्य-निर्देशक, पटकथा-लेखक, संवाद-लेखक : ज्योति प्रसाद आगरवाला

प्रथम फिल्म : जयमती (10 मार्च 1935)

प्रथम बैनर : चित्रलेखा मूवीटोन कंपनी (1933)

प्रथम नायिका : आईदेउ संदिकै

प्रथम नायक : परशुराम बरुवा उर्फ फुनूराम बरुवा

प्रथम सह अभिनेत्री : स्वर्गजोति बरुवा

प्रथम बाल कलाकार : रंजीत बरुवा

प्रथम फिल्म-पत्रकार : नरेन बरदलै

प्रथम फिल्म-समीक्षक : उमेशचन्द्र बरुवा

ईस्टमैन कलर फिल्म : आजली नबौ (1980)

प्रथम महिला फिल्मकार : सुप्रभा देवी

प्रथम सिनेमाघर : जोनाकी (तेजपुर 1937)

असंभव-सा था। दृढ़ निश्चय के धनी अगरवाला ने इस असम्भव को सम्भव कर दिखाया। उन्होंने 'तिनिदिनीया असमिया' आदि में विज्ञापन प्रकाशित करवाया। इसके बाद आईदेउ संदिकै ने जयमती की भूमिका की। वह असमिया सिनेमा की प्रथम नायिका बन गयी। जयमती के पति गदापाणि की भूमिका कर परशुराम बरुवा प्रथम नायक बने। अन्य कलाकारों में डॉ. ललित मोहन चौधरी, गजेन बरुवा, शुभ बरुवा, मनोभिराम बरुवा, रस बरुवा, वनमाली दास, प्रफुल्लचन्द्र बरुवा, मोहन फूकन, पुतुल दास, क्षीरदकांत बरुवा, पूर्ण शर्मा, डिम्ब गौहाई, धानुराम, जयंत बरुवा, हरेन शर्मा, नवीन आयवाला सहित कई नाम शामिल हैं। तीन वर्षीय रंजीत बरुवा ने गदापाणि के छोटे पुत्र लसाई की भूमिका की। जयमती फ़िल्म के सहायक निर्देशक राजेन बरुवा थे। लक्ष्मीनारायण बेजबरुवा, ज्योति प्रसाद अगरवाला, भरत वरपुजारी और चन्द्र कुमार अगरवाला गीतकार थे। अन्न अगरवाला, लिली बरुवा और स्वर्ग ज्योति बरुवा ने गायन किया।

कलकत्ता के रौनक महल में प्रथम असमिया सवाक् फ़िल्म जयमती का 10 मार्च, 1935 को प्रदर्शन किया गया। इस समारोह का उद्घाटन लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने किया। उस वक्त पृथ्वीराज कपूर, के.एल. सहगल, प्रमथेश बरुवा सहित कई फ़िल्मी हस्तियाँ उपस्थित थीं। असम में सिनेमा हॉल नहीं होने के कारण ज्योति प्रसाद अगरवाला ने पोर्टेबुल प्रोजेक्टर की सहायता से 20 मार्च, 1935 से असम में फ़िल्म का प्रदर्शन किया। ऐतिहासिक फ़िल्म 'जयमती' का निर्माण साठ 60 हज़ार रुपए की लागत से किया गया था। फ़िल्म बॉक्स ऑफिस पर सफल नहीं मानी गयी। अगरवाला ने अपनी दूसरी और अंतिम फ़िल्म 'इन्द्रमालती' (1939) का निर्माण किया। इसमें 25 हज़ार की लागत राशि थी। यह फ़िल्म काफ़ी सफल रही। इसके बाद 'मनोमती' (1941), 'रूपही खपट्टी' (1946), 'बदन बरफूकन' (1946)-जैसी फ़िल्मों के निर्माण का सिलसिला जारी रहा। वर्तमान में असमिया सिनेमा अच्छी स्थिति में है। प्रथम असमिया फ़िल्मकार ज्योति प्रसाद की पुण्यतिथि (17 जनवरी, 1951) पर असम में 'शिल्पी दिवस' मनाया जाता है। इस तिथि को सरकारी अवकाश रहता है। वर्तमान में असमिया फ़िल्म राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म महोत्सव का अंग बन गई है। प्रथम असमिया फ़िल्मकार ज्योति प्रसाद अगरवाला की स्मृति को शत शत नमन।

असम में सिनेमा हॉल नहीं होने के कारण ज्योति प्रसाद अगरवाला ने पोर्टेबुल प्रोजेक्टर की सहायता से 20 मार्च, 1935 से असम में फ़िल्म का प्रदर्शन किया। ऐतिहासिक फ़िल्म 'जयमती' का निर्माण साठ 60 हज़ार रुपए की लागत से किया गया था।

बुढ़ापे पर बड़ी बहस



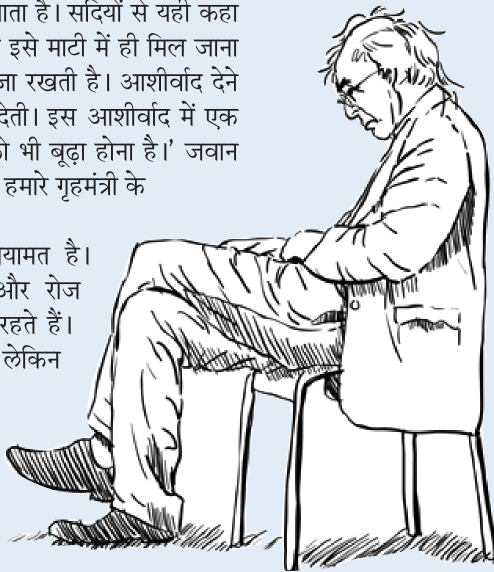
■ अक्षय जैन
संपादक, 'दाल-रोटी', मुम्बई

आदमी लंबी उम्र जीना चाहता है, लेकिन बूढ़ा कोई नहीं होना चाहता। अमरीका की दवा बनानेवाली बड़ी-बड़ी कंपनियाँ इस बात पर रिसर्च कर रही हैं कि आदमी हमेशा युवा बना रहे। जवानी एक बार आए तो वापस जाने का नाम न ले। औरों की जाए तो जाए, कम-से-कम अमरिकियों की तो न जाए!

हिंदुस्तान की बात और है। यहाँ लोग सहजता से स्वीकार कर लेते हैं कि वे बूढ़े हो गए हैं। अब उन्हें आशीर्वाद देने से दुनिया की कोई ताक़त नहीं रोक सकती। आशीर्वाद देने में जो अलौकिक आनन्द है, उसे एक जवान आदमी कभी नहीं समझ सकता। एक बूढ़े आदमी के लिए आशीर्वाद देना प्रॉविडेंट फंड पर ब्याज मिलने जैसा है।

हमारे यहाँ शरीर को नश्वर माना जाता है। सदियों से यही कहा गया है कि यह काया माटी की है और इसे माटी में ही मिल जाना है। ऐसी मान्यता बूढ़े लोगों को तरोताजा रखती है। आशीर्वाद देने के उनके हौसलों में कमी नहीं आने देती। इस आशीर्वाद में एक वार्निंग छिपी होती है- 'एक दिन तुमको भी बूढ़ा होना है।' जवान लोगों को डराने का ऐसा नायाब तरीका हमारे गृहमंत्री के पास भी नहीं है।

हिंदुस्तान में बूढ़ा होना एक नियामत है। इन्होंने अपने क्लब बना रखे हैं और रोज सरकार के लिए नसीहतें जारी करते रहते हैं। सरकार इनकी नसीहतें नहीं सुनती, लेकिन इनकी नसीहतों का बुरा भी नहीं मानती। सरकारें अच्छी तरह जानती हैं कि ये बूढ़े जिस मिट्टी के बने हैं, फँसनेवाले नहीं हैं। इन्हें कितनी भी सहूलियतें दे दो, वोट अपनी पसंदीदा पार्टी को ही देंगे। बूढ़े इस शाश्वत सत्य से अच्छी तरह से वाक़िफ हैं कि उनकी और सरकार की नियति एक जैसी है। अंजाम भी एक जैसा है। दोनों को अपनी जिंदगी का भरोसा नहीं है। कभी भी लुढ़क सकते हैं।



बुढ़ापा इतना भी ज़ालिम नहीं होता जितना अकसर कहा जाता है। लेखक और कलाकार जैसे ही सत्तर पार होते हैं, उनके वारे-नारे हो जाते हैं। अकादमियाँ और धर्मादा संस्थाएँ इन्हें पुरस्कार देने के लिए बेचैन हो जाती हैं। जिस हॉल में पुरस्कार-समारोह का आयोजन होता है, वहाँ संसार की सारी करुणा और वात्सल्य उमड़ आता है। वक्ता जमकर बोलते हैं। बधाई और श्रद्धांजलि में कोई फ़र्क नज़र नहीं आता। चेक, शॉल और गुलदस्ता देखकर कई लोग भावुक हो जाते हैं। काश! समय से पहले वे भी बूढ़े हो गए होते।

एक जवान आदमी को हमेशा लगता है कि सारी दुनिया उसकी मुट्ठी में है। एक मोबाइल कंपनी के इस विज्ञापन ने हमारी नौजवान पीढ़ी को बहुत गुमराह किया है। नौजवान होते ही ऐसे हैं। उन्हें हमेशा यही लगता है कि मल्टीनेशनल कंपनियाँ जो भी कहती हैं, सच कहती हैं और सच के सिवा कुछ नहीं कहतीं। सच यह है कि ज़िंदगी में कुछ चीज़ें बूढ़े होने पर ही हासिल हो सकती हैं। जैसे 'भारत रत्न'! यकीन न हो तो सचिन तेंदुलकर से पूछ लीजिए। पैसे के लिए क्रिकेट खेला और कहा देश के लिए खेल गया। जवानी में आदमी कुछ भी कर सकता है। झूठ को सच की तरह बोल सकता है और देश का नाम रौशन करने के लिए बार-बार नीलामी में बिक सकता है।

हाल ही में मेरे एक कवि-मित्र को तीन लाख का पुरस्कार मिला। कवि-मित्र चल फिर नहीं सकते। उनके घुटनों में दर्द रहता है। मैंने बधाई दी तो कहने लगे– 'इस उम्र में पुरस्कार का क्या फ़ायदा? जब जवान था, तब तो किसी ने दिया नहीं।' मैंने कहा– 'एक तरह से अच्छा ही हुआ। जवानी में मिलता तो सारा पैसा तुम अपनी प्रेमिकाओं पर उड़ा देते। उन्हें लेखिका बनाने के चक्कर में तुम्हारे घुटने खराब हो गए। प्रेमिकाएँ वापस आएँ, उससे पहले तुम नया घुटना लगवा लो। कवि-मित्र से कैसे कहता कि दाने-दाने पर लिखा है, खानेवाले का नाम और घुटने-घुटने पर लिखा है, लगवानेवाले का नाम! बूढ़ा आदमी तुलसी की चौपाई सुना सकता है, पतंग उड़ाने के गुर सिखा सकता है लेकिन यह हिमाकत कभी नहीं कर सकता कि अपने नये घुटने पर पुरानी प्रेमिका का नाम खुदवा दे।

हर बूढ़ा आदमी नया घुटना नहीं लगवा सकता। एक किसान बूढ़ा तो होता है, लेकिन उसे किसान होने के लिए पुरस्कार नहीं मिलता। एक मज़दूर की भी यही नियति है। कविता लिखनी चाहिए और क्रिकेट खेलना चाहिए। बूढ़े होने का हक़ सिर्फ़ कलाकारों और क्रिकेटरों को होना चाहिए। इस सूची में राजनेता, अफ़सर, बुद्धिजीवी और उद्योगपति शामिल हो सकते हैं। दुनिया पर जिन लोगों का आधिपत्य है, दुनिया को सबसे ज्यादा भोगने का हक़ भी उन्हीं का बनता है।

हर आदमी अमर होना चाहता है। हर आदमी जवान रहना चाहता है। इस चाहत में सबसे ऊपर वे लोग हैं जिनके पास दौलत है, ताक़त है, क़ानून है और फौज़ है। इन लोगों को लगता है कि ये लोग कभी बूढ़े नहीं होंगे। इन्हें बूढ़ापे से डर नहीं लगता वर्ना वे इतनी नाइंसाफ़ी नहीं करते और न ही इतनी लूट मचाते। इसकी एक ही वज़ह हो सकती है। अमेरिका ने हमारे दौलतमंद और ताक़तवर लोगों को वह दवा दे दी है जो आदमी को हमेशा जवान बनाए रखेगी। आणविक करार से भी बड़ी इस डील पर बड़ी बहस देखिए आज रात प्राइम टाइम में!

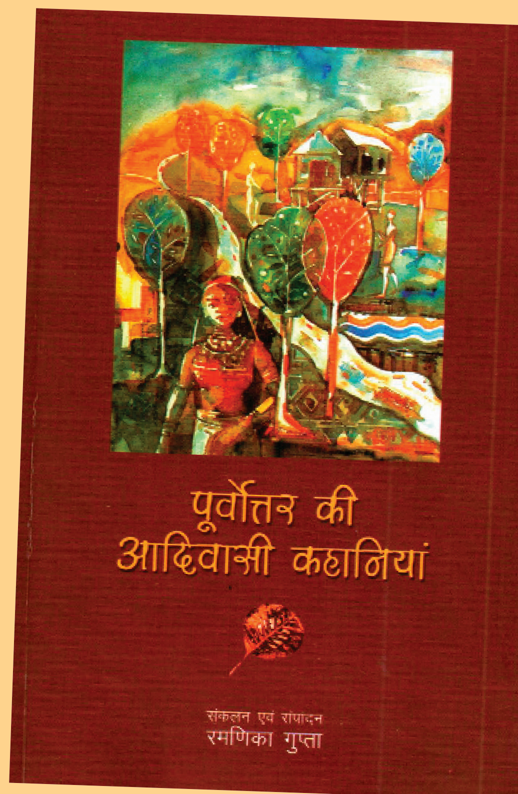
पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ

■ **अवनीश राजपूत,** लेखक जम्मू काश्मीर अध्ययन केन्द्र से जुड़े हैं

पूर्वोत्तर की कहानियाँ अपनी-अपनी संस्कृति, भाषा, भूगोल व उन अनुभवों को दर्ज कराती हैं, जो बाकी भारत से कई मामलों में भिन्न हैं। इनकी कहानियों में भारी संख्या में बहिरागत घुसपैठियों के आ जाने से, अपने ही देश और घर में परदेसी और पराया होने का एहसास पाठक के मन को बराबर कचोटता है। 'पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ' नाम से संकलित इस पुस्तक में अरुणाचलप्रदेश, असम, मिजोरम, मेघालय, नागालैण्ड, त्रिपुरा, सिक्किम, मणिपुर आदि क्षेत्रों के लेखकों की कहानियों को संजोया गया है। इस संकलन में पूर्वोत्तर के एक दर्जन से अधिक लेखकों की कहानियों को शामिल किया गया है जिनमें आइना, सड़क की यात्रा, जंगल की आग, एक पैसा, बाँझ, वापसी, बीते हुए दिन, डर, अमावस की रात, शिक्षक, संघर्ष, निराशा के उस पार, भूमिपुत्र, कठ-बाप सहित कुल सत्ताइस कहानियाँ हैं।

इनमें मेघालय से बियोजा सावियान की 'कठ-बाप' कहानी, जिस मार्मिकता से बच्चे और सौतेले पिता के वार्तालाप और उनकी गहरी संवेदना को व्यक्त करती है, वैसी संवेदना शेष भारत के अन्य लेखकों की कहानियों में कम ही देखने को मिलती है। इसी संकलन में निराशा की इन्तहा की हदों को तोड़कर, व्यक्ति की जिजीविषा के सहारे अपनी विकलांगता से उबरते मनुष्य की कहानी 'निराशा के उस पार' में कहानीकार वान्नेइहल्लुंगा ने बड़े ही रोचक तरीके से प्रस्तुत किया है। वहीं त्रिपुरा की ख्वालकुंगी की कहानी 'काउबय लाबेले जीन्स' बच्चों की तरफ माता-पिता का उपेक्षाभरा व्यवहार और बच्चे को अपराधियों के चंगुल में फँसने के ख़तरे की ओर संकेत करती है। इसके अलावा इस संकलन में सामाजिक सरोकारों को उकेरती एच. इलियास की 'सूर्यास्त' कहानी में शराब से बरबाद होते परिवारों की व्यथा को दर्शाने का प्रयास किया गया है। जबकि त्रिपुरा के स्नेहमयराय चौधुरी की कहानी 'साकालजुक' यानी स्त्री को डायन करार देने जैसी सामाजिक कुरीति पर करारा कटाक्ष है।

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक का संकलन एवं संपादन रमणिका गुप्ता ने किया है। रमणिका गुप्ता मूलतः पंजाब की रहनेवाली हैं और अबतक दो दर्जन से अधिक पुस्तकों का संपादन कर चुकीं हैं। फिलहाल रमणिका गुप्ता इन दिनों पूरे तटस्थ भाव से रचनात्मक लेखन के उन्नयन में लगी हुई हैं। संकलनकर्त्ता की मानें तो संकलन एक विशेष प्रकार की आभा लिए हुए है जो पढ़ने को प्रेरित और काफ़ी कुछ जानने को उत्साहित करता है। मानवीय संवेदनाओं की पड़ताल करती इस संकलन की सभी कहानियाँ आदिवासी समाज के हर पहलू से आपको अवगत कराती हैं।



पुस्तक-नाम :
पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ
संकलन एवं संपादनः
रमणिका गुप्ता
प्रकाशक :
नेशनल बुक ट्रस्ट
नेहरु भवन, 5 इंडस्ट्रियल एरिया
फेस-2, बसन्त कुञ्ज, नयी दिल्ली-70
मूल्य :
65/- (पेपरबैक-संस्करण)
आई.एस.बी.एन :
9788123755755

मुझमें क़ाबिलियत कहाँ जुलाहे सी

■ ''निश्छल''

मुझमें काबिलियत कहां जुलाहे सी
जो बुनता बिन गांठ गिरह बुंतर के
रिश्तों के ताने-बाने में फंसकर मैं
जीवन-तसन में गांठ लगाता जाता हूं

मुझमें काबिलियत कहां जुलाहे सी
जो समझूं रिश्तों का ताना-बाना
वो बुनता वस्त्र अजब सी मस्ती में
मैं गतिहीन सा खुद को पाता हूं

मुझमें काबिलियत कहां जुलाहे सी
बुन लूं रिश्ते बिन गांठ गिरह बुंतर के
लय मय आंखें लयबद्ध शरीर
अविरत भुजलय की बलि जाता हूं

मुझमें काबिलियत कहां जुलाहे सी
जो बिन गांठ बुनूं वसन जीवन
वो दिव्य कला से जोड़ता धागा
मैं चकित गांठ खोजता जाता हूं

विस्मित सा बस देख रहा हूं
निपट जुल्लाहे की दिव्य कला
सोच रहा हूं निपट कौन है
मैं, तुम या फिर अपढ़ जुल्लाहा

सोच रहा तरकीब सीख हूं
जीवन-वसन मधुर बुनने की
सिखा मुझे भी दिव्य कला गुरुदेव जुलाहे
बिन गांठ गिरह मधुर जीवन जीने की।



प्रकृति की चेतावनी



■ यशवंत चौहान

व्योम-विम्ब सिन्धु में था खो रहा।
ये आज क्या हो रहा।

अनल उदर में रखे अणु मौन है।
विवंश का वीभत्स ओठे (ओढ़े) कौन है।
वसुंधरा के वक्ष आज हिल रहे।
नीर-क्षीर रक्त में बह मिल रहे।

ज्ञान का विज्ञान आज सो रहा है।
ये आज क्या हो रहा है?

मातृ वक्ष का दोहन अब रोक दो।
क्षीर-नीर बिन्दु-बिन्दु रिष (रिस) चुकी।
स्नेह के वन सुमन सहेज कर,
मातृत्व की लाज आज बचे दी।

कुपुत्र मां के काट अंग ठो रहां
ये आज क्या हो रहा?

अज्ञान के कुटिल आघात सह रहे,
निर्झर मां के अश्रुधार बह रहे।
पवन समूह सावधान कह रहे,
पछाड़ खा पर्वत नदी में ठह (ढह) रहे।

शैलों का हर कंपित तृण-तरु हो रहा।
ये आज क्या हो रहा?

-भा.म. संघ कार्यालय
रामनरेश भवन, नई दिल्ली

